दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

विश्व-साहित्य-ग्रन्थमाला
(कहानी-विभाग का छटा ग्रन्थ)

भय का राज्य

[हिन्दी की छः मौलिक कहानियां]

लेखक—

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

सम्पादक, विश्व-साहित्य ग्रन्थमाला

प्रथमावृत्ति ११०० | अगस्त १९३२ | मूल्य १ रुपया, कपड़े की जिल्द १ रु० ६ आ०

प्रकाशक—

विश्व-साहित्य ग्रन्थमाला,

मैक्लेगन रोड, लाहौर।

मुद्रक—

मलिक हरभगवानदास,

नवजीवन प्रेस, लाहौर



श्रीमती पुरुषार्थवती

(दिल्ली—१९११ से १९३० तक)

समर्पण

तुम्हारे उस दिव्यरूप को, जो
मेरे दिल की सब से अधिक
कीमती, गहरी, पवित्रतम और
रोमाञ्चित कर देनेवाली स्मृति
के रूप में मेरे अन्तर्तम में
निवास कर रहा है।

—चन्द्रगुप्त

वक्तव्य

यह मेरी कहानियों का दूसरा संग्रह है। पूरे तीन वर्षों के बाद मैं अपनी नई कहानियों का यह संग्रह प्रकाशित कर रहा हूँ। मुझे उमीद थी कि मेरी कहानियां लिखने की रफ़्तार काफ़ी तेज़ रहेगी। मगर यह हो नहीं सका। क्यों ?—इस की कथा बहुत करुण है, वह मैं सुना नहीं सकूँगा। उस का सारांश इतना ही है कि पिछले अठारह महीनों में मैं ने एक भी नई कहानी नहीं लिखी। इस संग्रह की पहली चार कहानियां सन १६३० की लिखी हुई हैं। पांचवी कहानी पहले संग्रह से लीगई है और अन्तिम कहानी मैं ने बिलकुल हाल ही में, यानी कल-परसों ही, लिखी है। यह कहानी इतनी शीघ्रता में लिखी गई है कि वह शीघ्रता, कला के प्रति अपराध के रूप में ली जानी चाहिए। मैं इस कहानी की जो-जो स्लिपें लिखता जाता था, उन्हें प्रेस के कम्पोज़ीटर इस तरह उठा ले जाते थे जैसे "इङ्क व्राएज़" ट्रैडल में से छपे हुए कागज़ खींच लेते हैं।

इन पिछले अठारह महीनों में मैं अपने सदा के अभ्यस्त जीवन से बहुत दूर निकल आया हूँ। मैं एक पर्वत-शिखर पर अनायास ही जा चढ़ा था, मगर भाग्य के फेर से शीघ्र ही नीचे जा गिरा। मुझे एक अमूल्य निधि मिली थी, मगर अचानक ही वह मुझ से छिन गई। जीवन के इन चढ़ाव-उतारों की कहानी-साहित्य में बड़ी कीमत है। इस पिछली अवधि में मैं इन्हीं चढ़ाव-उतारों का प्रत्यक्ष अनुभव करता रहा हूँ, और सम्भवतः अब भी उसी दशा में हूँ। तथापि इस संग्रह की कहानियों में मेरी वर्तमान मानसिक अनुभूतियों का प्रतिबिम्ब ज़रा भी नहीं पड़ने पाया। ये कहानियां (अन्तिम को छोड़ कर) पहले की लिखी हुई हैं और इन कहानियों के साथ मेरे जीवन का एक सुनहला अध्याय, जिस में मैं काफ़ी अनुभवहीन और अबोध था, समाप्त होगया है।

मुझे इस बात का अभिमानपूर्ण विश्वास है कि पाठक मेरी इन कहानियों को पसन्द करेंगे।

लाहौर
४ अगस्त १९३२

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विषय सूची

भय का राज्य

गुलाब

अनुक्रमणिका

श्रीनगर से जो सड़क शाहीचश्मे की तरफ़ गई है, वह टेढ़ी-मेढ़ी होकर एक सुन्दर पहाड़ी के दामन में इस तरह लेटी हुई है, जैसे महादेव की जटा में सांप लिपटा हुआ हो। सड़क के आसपास ज्यादा आबादी नहीं है। सिर्फ़ चिनार और सफ़ेदे के घने झुरमुटों की छाया में कहीं-कहीं काश्मीरी किसानों के पांच-पांच, सात-सात लकड़ी के बने-हुए दुमंज़ले मकान हैं। सड़क रात के समय बिल्कुल सुनसान पड़ी रहती है। दिन में मौके-बेमौके कोई-कोई भोंपों-भोंपों करती हुई मोटर या लारी

बड़ी तेज़ी से इस सड़क पर से निकल जाती है। किसी-किसी समय लकड़ी के भारी पहियों की सुस्त चुरमुराहट के साथ मस्त और बेफ़िक्र आवाज़ में गाते हुए गाड़ीवानों की आवाज़ भी इस मार्ग के सन्नाटे को भंग करती है। इसी सड़क पर हुक्मत नाम का एक बूढ़ा काश्मीरी सन्नाटे में दिन-भर अकेला बैठा रह कर मुसाफ़िरों का इन्तज़ार किया करता है। कोई दे चाहे न दे—वह सब के लिए अपने खुदा से मीठी-मीठी दुआएँ माँगता है। चिनार के एक पुराने वृक्ष की छाया में, ठीक एक ही स्थान पर, वह लगातार न जाने कितने बरसों से बैठा हुआ दिखाई देता है। जिस तरह से सड़क के किनारे के पुराने वृक्षों और बड़ी बड़ी चट्टानों के सम्बन्ध में किसी को ज्ञात नहीं कि वे कब से वहां इस तरह मौजूद हैं, और उनको देखने का सब को अभ्यास हो गया है, उसी तरह से वह बूढ़ा भी, न जाने कितने बरसों से आशीर्वाद देनेवाले एक स्थाणु के समान ठीक एक ही स्थान पर जमकर बैठा हुआ दिखाई देता है, और राहगीरों को उसे इसी रूप में देखने का अभ्यास हो गया है।

(१)

विन्ध्येश्वरी को तीर्थ-यात्रा का बेहद शौक था। बालपन की चंचलता के दिनों में भी उसमें असाधारण श्रद्धा के बीज मौजूद थे। पंडितों के मुँह से देवी-देवताओं के कारनामों की कथा वह बड़े चाव और श्रद्धा के साथ सुनती। वह धनी .खानदान की थी, इसलिए प्रायः प्रति वर्ष ही उसे किसी-न-किसी नए तीर्थ के दर्शन

करने का अवसर मिल जाता था। उसका विवाह भी एक सम्पन्न खानदान में हुआ था। पतिदेवता कालेज की तालीम पाए हुए थे, यद्यपि उन्होंने कोई इम्तहान पास नहीं किया था। उनका नाम रामप्रताप था। औसत दर्जे के धनी आदमियों से न वह किसी दर्जे अच्छे थे और न बुरे। देवी-देवताओं में उन्हें श्रद्धा नहीं थी, मगर कोई विरोध का भाव भी नहीं था। वह युक्त-प्रान्त के एक वैभवशाली ज़मींदार थे। कामकाज या नौकरी-चाकरी की झल्लतें उन्हें नहीं झेलनी पड़ती थीं। अपनी ज़मींदारी के सम्बन्ध में भी उन्हें बहुत दिलचस्पी नहीं थी। ज़मींदारी का अधिकांश बोझ खानदान से चले आरहे एक पुराने कारिन्दे पर था, इसलिए विन्ध्येश्वरी के साथ यात्रा पर जाने की सालभर में उन्हें काफ़ी फ़ुरसत मिल जाती थी। उनका अपना उद्देश्य तीर्थयात्रा तो न था; मगर किसी तीर्थ पर जाकर पंडों और पुरोहितों को कुछ दान-दक्षिणा दे देने में या नदी अथवा तालाब में दो-एक गोते लगा लेने में उन्हें कोई हानि भी प्रतीत नहीं होती थी। लगे हाथ यदि धर्मराज के बैंक में वह अपने नाम पर कुछ पुण्य की धरोहर भी जमा करवा सकें, तो उनके लिए यह कोई महँगा सौदा तो नहीं है।

विन्ध्येश्वरी और रामप्रसाद की घर-गिरस्ती की गाड़ी चार-पाँच वर्षों से चक्कर काट रही है। यह कहा जा सकता है कि दोनों का जीवन सुखी है। पति-पत्नी में प्रेम है। घर में नौकर-चाकर, रुपया-पैसा किसी भी चीज़ की कमी नहीं है। एक सन्तान भी है, वह कन्या है। विन्ध्येश्वरी और रामप्रताप को उस से असीम

स्नेह है। इस कन्या का नाम प्रमीला देवी है । उसने अभी तक तीसरा वर्ष भी समाप्त नहीं किया।

इस वर्ष विन्ध्येश्वरी ने प्रमीला का मुंडन-संस्कार करने का निश्चय किया। विन्ध्येश्वरी चाहती थी कि प्रमीला के पहली बार काटे गए बालों को वह अमरनाथ की दैवीय गुफ़ा के समीप वाले तालाब में विसर्जित करे। बस; पति-पत्नी में इस बात पर सलाह-मशविरा हुआ, और अगस्त मास में रामप्रताप और विन्ध्येश्वरी, प्रमीला और उसकी धाय को साथ लेकर, अमरनाथ-बाबा के दर्शनों के लिए रवाना हो गए।

अब के बरसात ज़ोरों पर थी। काश्मीर की सुन्दर घाटी के नदी-नाले सब बेतरह बढ़े हुए थे। इससे श्रीनगर पहुँचकर रामप्रताप को अमरनाथ की यात्रा शंकारहित न जान पड़ी। दुर्भाग्य से उन का अपना स्वास्थ्य भी बिगड़ गया। उन्होंने विन्ध्येश्वरी को सलाह दी कि इस वर्ष अमरनाथ की यात्रा स्थगित कर दो, मगर वह इस बात को कब मानने वाली थी। पति के बहुत अनुनय-विनय करने पर भी वह प्रमीला, उसकी धाय तथा एक नौकर को अपने साथ लेकर अमरनाथ की यात्रा के लिए रवाना होगई। रामप्रताप अकेले ही श्रीनगर में रहकर उनके वापस लौटने का इन्तज़ार करने लगे।

अमरनाथ की यात्रा प्रारम्भ होने के तीन-चार दिनों के बाद वर्षा ने और भी अधिक ज़ोर पकड़ लिया। दिन-रात की मूसलाधार वर्षा शुरु हुई।

अभाग्य से इन्हीं दिनों रामप्रताप के कारिन्दे का ज़मींदारी के

एक काम के सम्बन्ध में एक आवश्यक तार आया, जिसमें उन्हें एकदम लौट आने की प्रेरणा की गई थी। रामप्रताप अपनी कन्या और पत्नी को ईश्वर के भरोसे छोड़कर उसी दिन अपने गाँव के लिए रवाना हो गए। अपनी ज़मींदारी में पहुँचने के सिर्फ़ एक सप्ताह बाद ही उन्हों ने अखबार में पढ़ा कि इस वर्ष काश्मीर की घाटी में भयंकर बाढ़ आजाने के कारण अमरनाथ के सैकड़ों यात्री पानी में डूब गए हैं। रामप्रताप के होश-हवास जाते रहे। अपनी ज़मींदारी की समस्या को वीच में ही छोड़ कर वह काश्मीर के लिए रवाना हो गए।

अमरनाथ की गुफ़ा से सिर्फ़ अठाईस मील नीचे, पहलगाँव में पहुँचकर रामप्रताप का विन्ध्येश्वरी से तो साक्षात् हो गया, मगर वह अपनी प्यारी पुत्री का मुँह न देख सके। विन्ध्येश्वरी ने रो-रोकर अपने स्वामी को बताया कि पहाड़ की ऊँचाई पर के एक पड़ाव में उनकी वह नन्हीं-सी बालिका अपनी धाय के साथ पानी के प्रवाह में बह गई। विन्ध्येश्वरी ने उसे डूबते हुए स्वयं तो नहीं देखा, परन्तु उसके नौकर का यही कहना है। विन्ध्येश्वरी के भरसक प्रयत्न करनेपर भी उन दोनों में से किसी की लाश तक भी नहीं पाई जा सकी।

(२)

सितम्बर महीने की एक साँझ का समय था। आज दिनभर से आस्मान में बादल घिर रहे थे। पिछले दिनों बहुत अधिक वर्षा होते रहने के कारण काश्मीर में सरदी बहुत अधिक बढ़

गई थी। बूढ़ा हुक्मत सिकुड़कर चुपचाप अपनी जगह बैठा था। उसे सरदी सता रही थी; मगर सरदी से बचने का उसके पास कोई साधन नहीं था। इसी समय बिजली की एक प्रबल रेखा आस्मान-भर में इस तरह घूम गई, जैसे भगवान ने किसी बड़े ब्लैकबोर्ड पर चाक से लिखकर देखने का परीक्षण किया हो। इसके अगले ही क्षण बादल बड़े ज़ोर से गरज उठा, और वह सुन्दर घाटी बादल की उस गम्भीर आवाज़ से प्रतिध्वनित होकर और भी अधिक सन्नाटा थाम कर बैठ गई। फकीर ने लक्षणों से समझ लिया कि शीघ्र ही भयंकर वर्षा होने वाली है। उसने अपनी लाठी सम्हाली, अपना भीख माँगने का टूटा हुआ गोल-मोल और काला बरतन उठाया, और अपनी जगह से सरकना शुरू किया। सड़क से दस-पन्द्रह गज़ परे हटकर चिनार के बहुत से तनों के बीचों-बीच एक झोंपड़ी थी। झोंपड़ी क्या थी, ज़रा-सा फूँस-फाँस डालकर एक आदमी के लेट रहने लायक़ जगह बना ली गई थी। इसी ज़रा-सी झोंपड़ी में एक तरफ एक हँडिया और कुछ लकड़ियाँ रक्खीं थीं। छत के बाँस से एक थैला भी लटक रहा था, इसमें पचमेल अनाज भरा हुआ था। बिस्तरे के नाम पर अत्याचार करके कुछ लोग्गड़ और चीथड़े भी एक कोने में पड़े थे। झोंपड़ी का मुँह दो बल्लियों को क्रास के रूप में रखकर बन्द किया गया था। फकीर ने धीरे-धीरे इन बल्लियों को हटाया और फिर वह अन्दर दाखिल हो गया। दिआसलाई जलाकर उसने आग सुलगाई और अपने बढ़िया से बिस्तरे पर

बैठकर आग सेकने लगा। इस समय तक बाहर बड़े ज़ोर से वर्षा शुरू हो चुकी थी। वर्षा क्या थी, नूह का तूफ़ान था। आस्मान में बिजली चमकती थी। बादल गरज-गरजकर पहाड़ों को चैलेंज देते थे, और पहाड़ों की चोटियाँ और भी अधिक गम्भीरता धारण करके बादलों की उस ललकार को स्वीकार करती थीं। वर्षा पड़ने की ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ आ रही थी। साथ ही आँधी भी चल रही थी, मालूम होता था कि सब कुछ उलट-पुलट हो जायगा। ग़नीमत इतनी ही थी कि फ़कीर की झोंपड़ी बड़े-बड़े वृक्षों की ओट के कारण इतनी सुरक्षित थी कि उसके उड़ जानेका भय नहीं था।

फकीर ने अब भोजन करने का इरादा मुल्तवी कर दिया। इस अंधड़ में कौन पकाए और कौन खाए। लकड़ियोंके जब अंगारे बन गए, तो बुड्ढे ने उन से अपनी कांगड़ी* भरी और लेटकर सुस्ताने लगा।

इसी समय फकीर को सड़क पर से किसी बच्चे के चीखने की आवाज़ सुनाई दी। वर्षा पड़ने की ऊँची आवाज़ के कारण यह चीख बहुत स्पष्ट नहीं थी, फिर भी उसमें अत्यधिक भयपूर्ण करुणा उत्पन्न करने की पूरी शक्ति विद्यमान थी। यह चिल्लाहट करीब-करीब उसी जगह से आ रही है, जहां वर्षों से बैठा रहकर

---

*मिट्टी का एक काश्मीरी बरतन, जिसमें आग भर कर काश्मीरी लोग उसे अपने कपड़ों के अन्दर कर लेते हैं।

वह राहगीरों से भीख मांगा करता है। फकीर चौंक पड़ा। वह नेकचलन और रहमदिल था। उसने इस बात की परवाह नहीं की कि उस पर भी कोई आफ़त आ सकती है। वह उठा, और उसने अपनी लकड़ी संभाली। अभी रात का-सा अंधेरा नहीं हुआ था। काले-काले बादलों ने सितम्बर महीने के इस सांयकाल को रात के समान अवश्य बना रखा था, मगर अभी तक कुछ भी दिखाई न देने की नौबत नहीं आई थी।

सड़क के निकट पहुँच कर उसने देखा कि दो गेरुआधारी साधु सड़क के किनारे खड़े होकर एक छोटे से बच्चे के कान खींच रहे हैं। निकट पहुँच कर हुक्मत ने एक बार बड़े ज़ोर से खुदा का नाम लिया, और इसके बाद अस्पष्ट काश्मीरी भाषा में वह इस तरह चिल्लाने लगा, जैसे वह किसी को बुला रहा हो। दोनों गेरुआधारी हुक्मत को इस तरह चिल्लाता हुआ देखकर भयभीत हो गए, और उस बच्चे को वहीं छोड़कर भाग गए। बूढ़ा फकीर दाएँ हाथ में लाठी को मज़बूती से थामकर सड़क पर उतरा। उसने निकट आकर देखा कि बच्चा तीन-चार वर्ष की एक बहुत ही सुन्दर बालिका है।

बालिका अभी तक उसी तरह ऊँची आवाज़ में रो रही थी। फकीर ने पुचकार कर उसे अपनी गोद में उठा लिया, और अपनी झोंपड़ी की तरफ़ ले चला। उसने देखा कि वर्षा के कारण कन्या के सब कपड़े बिल्कुल गीले हो गए हैं, और वह सरदी के मारे कांप रही है। शीघ्रता से उसे झोंपड़ी में ले जाकर फकीर ने

उसके गीले कपड़े उतार दिए और उन्हें निचोड़ कर एक तरफ़ डाल दिया; फिर उसने अपने फटे हुए कम्बल से बालिका को अच्छी तरह ढक दिया। बालिका के कानों से कुछ खून बह रहा था। बूढ़े ने अनुमान किया कि लुटेरे इन कान के आभूषणों के लोभ में ही इस कन्या को कहीं से उड़ा लाए हैं।

बालिका का रोना तो अब बन्द हो चुका था, परन्तु उसका चेहरा अब भी बहुत उदास था। उसका स्वरूप इतना अधिक सुन्दर था कि उसे देखते ही प्यार करने की इच्छा होती थी। उसकी आंखें ख़ासतौर से सुन्दर थीं। वह किसी बड़े घराने की मालूम होती थी। रोना बन्द करके वह बड़े भय के साथ उस ग़रीब फकीर की अंधकारमय झोंपड़ी को देखने लगी।

उसकी इस दुखभरी दृष्टि ने फकीर के दिल को पिघला दिया। एक ठंडी साँस लेकर वह उठ खड़ा हुआ। बालिका न जाने कब की भूखी है, इस विचार ने उसे बेचैन बना दिया। फकीर ने अपनी हँड़िया चूल्हे पर चढ़ा दी। गुथली में से मक्का के दाने छांट-छांट कर उसमें डाल दिए। फिर गुथली की तह में से ज़रा-सा गुड़ निकाला। थोड़ी ही देर में बालिका के लिए बिना घी का गुड़-मिला मीठा भात तैयार हो गया। फकीर के पास कुछ पैसे भी थे; मगर इस आंधी और वर्षा के समय बालिका को उस अँधेरे स्थान पर अकेला छोड़ कर एक मील दूर की दुकान पर जाना उसे निरापद प्रतीत नहीं हुआ।

बालिका सचमुच बहुत भूखी थी। स्वाद से या बग़ैर स्वाद

के उसने यह भात खाया। बूढ़ा उसे स्वयं अपने हाथ से यह भोजन करा रहा था।

सहसा बड़े ज़ोर से बिजली चमकी। इस समय तक सब ओर घना अन्धकार व्याप्त हो चुका था। बिजली के तेज़ प्रकाश में क्षणभर के लिए सभी कुछ जैसे जगमगा उठा। बालिका यह देखकर खुश हो गई। बड़ी ही मधुर और अबोध मुसकराहट के साथ कुटिया के बाहर की तरफ़ उँगली उठाकर वह बोली—"बिद्दी!"

मालूम नहीं कि बूढ़े फकीर ने कभी व्याह भी किया था या नहीं, अथवा कभी उसकी कोई सन्तान भी रही थी या नहीं; परन्तु इतना ज़रूर मालूम है कि उसके अब तक के जीवन में बच्चे उसके लिए आफ़त के पुतले बने हुए थे। बूढ़ों के साथ शरारत करने में बच्चों को विशेष आनन्द आता है। यह बूढ़ा फकीर भी आसपास के किसान बालकों के उपद्रवों से बरी नहीं था। कभी कोई बच्चा उसकी लाठी छीन कर ले जाता था, कभी कोई उस पर कंकड़ फेंकता था। कभी-कभी बच्चे एक साथ मिल कर उसे चिढ़ाया करते थे—'बुड्ढा! बुड्ढा!' परन्तु आज एक अबोध और सुन्दरतम बालिका को बिल्कुल अपनी दृष्टि से देखने का उसे पहली बार अवसर मिला। बूढ़ा फकीर वात्सल्य प्रेम के इस अनोखे आनन्द में मग्न हो गया।

(३)

बूढ़े फकीर ने बहुत सोच-विचारकर इस बालिका का नाम

रक्खा 'गुलाब'। बूढ़े को मालूम नहीं था कि गुलाब शब्द पुंल्लिग है या स्त्रीलिंग। यह शब्द चाहे किसी भी लिंग का क्यों न हो, परन्तु बूढ़े हुक्मत को इस सुन्दरतम फूल के समान बालिका के लिए 'गुलाब' से बढ़कर कोई उपयुक्त नाम नहीं सूझा।

हुक्मत के जीवन में एक बड़ा परिवर्तन आ गया। उसे अनुभव हुआ कि गुलाब किसी बहुत बड़े घराने की कन्या है, और उसे मैले रहने की आदत नहीं है। उसने साबुन खरीदकर अपना कम्बल और एक फटी हुई चादर को धो डाला। अपने जीवन-भर के परिश्रम से उसने जो थोड़े-बहुत रुपये जमा किए थे, उन्हें अब वर्षों के बाद हवा लगने लगी। बालिका के पैर नंगे थे, उन्हें इन रुपयों के प्रताप से ढाँक दिया गया। उसके लिए अब गाय का शुद्ध घी और दूध खरीदा जाने लगा। बूढ़े ने स्वयं भी अब कुछ साफ़ रहना शुरू किया

फकीर का काम अब भी भीख माँगना ही है। वह प्रति-दिन अपने उसी स्थान पर बैठकर भीख माँगता है; मगर अब वह अपना पेशा उतने निष्काम भाव से नहीं करता। अब वह सभी राहगीरों के सामने बहुत अधिक गिड़गिड़ता है। इसके लिए अनेक बार वह उठ भी खड़ा होता है, और कभी-कभी तो तेज़ भागती हुई लारियों के पीछे दौड़ने का व्यर्थ प्रयास भी करता है। उसके इतना प्रयत्न करने पर भी जब अनेक राहगीर उसे कुछ नहीं देते, बल्कि उस पर नाराज़ होते हैं, तो भी वह उन्हें दुआएं तो देता है, मगर ये मुफ्त की दुआएं देते हुए अब उसे कोई उत्साह-

पूर्ण प्रसन्नता अनुभव नहीं होती। हुक्मत जिस स्थानपर बैठकर भीख माँगता है, उससे थोड़ी ही दूरी पर ऊँचे और मखमली घास से मढ़े हुए एक स्थान पर बैठकर वह देवदुर्लभ रूप की बालिका अपने में मस्त होकर खेला करती है। बूढ़े ने उसे दो तीन लकड़ी के मामूली-से खिलौने खरीद दिए थे। वह उन्हीं में मस्त रहती है। बीच-बीच में अपना खेल बन्द करके वह सड़क पर तेज़ी से आती-जाती बसों की तरफ़ वह आँख उठाकर देख भी लेती है; मगर आश्चर्य यह है कि उस ज़रा-सी बालिका के लिए मोटर कोई विशेष कौतूहल की चीज़ नहीं मालूम होती।

गुलाब बहुत कम बोलती है। वह रोती भी नहीं है। बूढ़ा फकीर हर समय उसे अपनी नज़र में रखता है। उसके दिल में इस नन्हीं-सी बालिका ने एक नया स्रोत खोल दिया है। बीसियों साल से जो दुनिया उस की आंखों में बिल्कुल घिस चुकी थी, वह अब फिर से उसे नए रूप में दिखाई देने लगी। यदि कभी खेलते-खेलते बालिका थोड़ा-सा इधर-उधर हट कर एक मिनट के लिए भी किसी चट्टान की ओट में हो जाती, तो बूढ़े हुक्मत का दिल कांप जाता। वह चटपट उठ खड़ा होता और गुलाब को ढूँढ़कर अपनी गोद में उठा लेता।

नन्हीं गुलाब ने भी हुक्मत का एक नाम रख छोड़ा था। जब कभी वह बहुत प्रसन्न होती, तो अपनी तोतली आवाज़ में हुक्मत को बार-बार बुलाया करती—"बुड्ढा !"

—हुक्मत इसे सुनता और खुशी में मस्त हो जाता।

(४)

एक दिन गुलाब, न जाने क्यों, सहसा मचल पड़ी। दोपहर का समय था। सरदी का मौसम अब ज़ोरों पर था, इस कारण इस वक्त की धूप बहुत ही मज़ेदार मालूम होती थी। इसी समय एक अँग्रेज़ बच्चे को गाड़ी में बिठा कर ले जाती हुई दो हिन्दुस्तानी दासियां उसी सड़क पर से गुज़रीं। उन के पीछे एक अंग्रेज़ दम्पति भी थे। वे लोग इस ओर सैर के उद्देश्य से आए थे। उन्हें देख कर हुक्मत ने सलाम कर के भीख मांगी। गुलाब अपने खेल में मस्त थी। आज वह हुक्मत के एकदम पास, सड़क के साथ लगकर पड़ी हुई एक बड़ी-सी चट्टान के ऊपर बैठी थी। अचानक अंग्रेज़ महिला की दृष्टि इस बालिका पर पड़ी। उस ने हिन्दुस्तानी में हुक्मत से पूछा—"यह किस की लड़की है?"

गुलाब का परिचय लोगों को देना हुक्मत को भला मालूम नहीं होता था। यह इसलिए कि उसे अपनी कन्या कह कर वह लोगो के दिलों में से उस खानदानी लड़की की इज़्ज़त कम नहीं करना चाहता था। फिर भी वह मेम साहब के सवाल का इस के अतिरिक्त और कोई उत्तर न दे सका कि यह मेरी लड़की है।

अंग्रेज़ सज्जन ने आश्चर्य के साथ गुलाब की तरफ़ देख कर अपनी पत्नी से अंग्रेज़ी में कहा—"काश्मीर के बच्चे सचमुच असाधारण सुन्दर होते हैं!"

इस के साथ ही बूढ़े के आगे एक रुपया फेंक पर वे दोनों आगे निकल गए। इसी समय गुलाब की नज़र बच्चे की गाड़ी

पर पड़ी। बालिका सहसा खुश हो गई। वह दोनों हाथ एकसाथ उठा कर कहने लगी—"आः, आः, गाड़ी! आः, आः, गाड़ी!"

मगर अब गाड़ी तो क्रमशः बालिका से दूर होने लगी। उसे अपनी पहुँच से दूर होते देख बालिका सहसा मचल पड़ी। रोनी सूरत बना कर वह कहने लगी—"ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी! ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी!!"

शायद इस बालिका की भी कभी कोई ऐसी ही गाड़ी रही होगी, और इस गाड़ी को देख कर उसे अपनी गाड़ी का ध्यान हो आया होगा। बेचारा हुक्मत बड़ी पसोपेश में पड़ा। उससे जब और कुछ न बन पड़ा, तो उस ने बालिका को गोद में उठा कर पुचकारना शुरू किया, मगर वह न मानी। गुलाब के रोने का वेग कम न हुआ। वह रह-रह कर कहती थी—"ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी! ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी!!"

पंचतन्त्र में एक कहानी आती है कि एक बार एक शेर का बच्चा भूल से भेड़ों के झुण्ड में जा मिला था। भेड़ों में रह कर वह भी अपने को भेड़ ही समझने लगा था। परन्तु एक दिन दूर पर एक शेर की गरज सुन कर वह पुलकित हो उठा। उस की आत्मा अचानक कह उठी—"तू भी तो शेर है!" बस, वह उसी समय शेर बन गया। शायद आज गुलाब को वैसे ही अपनी अतीत जीवन की स्मृति हो आई। वह तो किसी भिखारी की कन्या नहीं है। उस के पास भी तो एक अपनी गाड़ी थी! उसकी वह गाड़ी गई कहां?—"ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी! ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी!!"

हुक्मत उस दिन और भीख न मांग सका। गुलाब को गोद में लेकर वह अपनी झोंपड़ी में चला आया। बालिका को फुसलाने के लिए उस ने बड़े प्रयत्न से हलुआ तैयार किया। अपनी लड़खड़ाती हुई आवाज़ को मेहनत से साधकर गीत गाए। जंगली फूलों की बेलों से फूल बीन कर सुन्दर गुलदस्ता तैयार किया, मगर आश्चर्य यह कि गुलाब अब भी प्रसन्न न हुई। वह उसी तरह मचल रही थी—"ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी! ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी!!"

हुक्मत भिखमंगा था—उस की ग़रीबी बताने के लिए इस से बढ़ कर नंगा प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। आज गुलाब की इस ज़िद को देख कर उसे अपने जीवन में पहली बार अपनी ग़रीबी पर दुख हुआ। यह दुख बहुत अधिक तीव्र था। इतना अधिक तीव्र कि उस की तेज़ी को हृदय सह नहीं सकता। बूढ़े हुक्मत ने एक ठण्डी सांस लेकर अपने परवरदिगार खुदा का नाम लिया और इस के बाद उस ने अपनी झोंपड़ी का एक कोना खोदना शुरू किया। तीन फीट गहरा खोद चुकने पर उस में से चांदी के कुछ रुपये निकले। ये संख्या में ३६ थे। अभागे हुक्मत की सम्पूर्ण जवानी-भर की यही कमाई थी। रुपये बिल्कुल काले पड़ चुके थे। हुक्मत ने एक गहरी सांस लेकर इन रुपयों को रगड़ना शुरू किया। थोड़ी ही देर में वे चमचमा उठे।

फकीर को घबराहट इस बात की थी कि यदि वह अपने सम्पूर्ण जीवन की कमाई खर्च करके भी गुलाब का वांच्छित उपहार खरीद

न सका, तो क्या होगा ! तो भी वह उठा। गढ़े को पूरी तरह भर कर उस ने कुटिया का द्वार बन्द किया और गुलाब को अपनी गोद में उठा कर वह श्रीनगर के लिए रवाना हो गया।

बालिका का रोना अब बन्द हो चुका था। मुमकिन है कि उसे गाड़ी की याद भूल चुकी हो ! परन्तु उसका चेहरा फिर भी बहुत उदास था। गुलाब का यह उदास चेहरा हुक्मत के नरम हृदय को मथ रहा था। काश कि गुलाब एक बार फिर उसी भोली-भाली आवाज़ में मुसकरा तो दे। उस की एक मुसकराहट के लिए बूढ़ा फकीर अब सब-कुछ करने को तैयार था।

बाज़ार में पहुँच कर हुक्मत ने एक गाड़ी खरीदी। चौंतीस रुपये छः आने में उसे एक सैकन्ड हैन्ड, परन्तु बढ़िया गाड़ी मिल गई। हुक्मत का दिल खुश हो गया। इतना प्रसन्न वह जन्म-भर में कभी न हुआ होगा। उसके पास अब सिर्फ एक रुपया दस आने ही बाकी बचे थे। बूढ़े ने उन्हें भी खर्च कर दिया। इनसे उसने गुलाब के लिए खिलौने खरीद लिए।

इस नई गाड़ी पर बैठकर गुलाब खुश हो गई; और हुक्मत की तरफ़ देखकर एक बार उसने बहुत ही मधुर आवाज़ से पुकारा—"बुड्ढा !" इस समय गुलाब सचमुच एक देवकन्या के समान प्रतीत होती थी। अपने दोनों हाथों को उसने छाती तक उठा रखा था, उनमें वह दो पुतलियां सम्हाले हुई थी। उसके चेहरे पर एक सरल मुसकराहट थी।

बूढ़े का दिल नाच उठा। दुनियां में इससे बढ़कर भी कोई

प्रसन्नता हो सकती है—यह उसकी कल्पना से भी परे की बात थी। बूढ़ा हुक्मत लड़खड़ाती हुई टांगों से दौड़-दौड़ कर स्वयं वह गाड़ी खींचने लगा।

बाज़ार से निकल कर वह अमीरा-कदल पहुँचा। सड़क वहाँ से नदी के किनारे-किनारे घूमती है। इसी सड़क पर गाड़ी को तेज़ी से दौड़ाता हुआ बूढ़ा शहर के बाहर आ पहुँचा। गुलाब की यह गाड़ी जब हज़ूरी बाग़ के पास से मुड़कर जेहलम के किनारे पहुँची, तब एक मोटर उसके पास से गुज़री। गुलाब की नज़र मोटर की तरफ़ थी। मोटर बहुत ही मामूली चाल से जारही थी। अचानक गुलाब मोटर में बैठे हुए सज्जन की तरफ़ देखकर ज़ोर से चिल्ला उठी—"बाब्बू!"

मोटर का मालिक यह आवाज़ सुनकर पहले तो चौंका और उसके बाद बड़ी शीघ्रता से मोटर से नीचे उतर कर उसने गुलाब को गोद में उठा लिया। उसे अपनी छाती के साथ ज़ोर से चिपका कर वह गद्गद स्वर में बोला—"मेरी प्रमीला!"

हुक्मत किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। वह अब भी गाड़ी के मुट्ठे को पकड़ कर निश्चल-भाव से खड़ा था। इसी समय रामप्रताप अपनी कन्या प्रमीला को लेकर मोटर में सवार हो गया। गुलाब के दोनों हाथों में अभी तक गटापर्चे की वे पुतलियां थमी हुई थीं। मोटर में बैठकर हुक्मत की तरफ़ देख कर वह फिर से मुस्करा दी। शायद अबोध बालिका उसे अपने पिता का परिचय देना चाहती थी।

रामप्रताप का ध्यान भी अब बूढ़े की तरफ़ आकृष्ट हुआ। उसने पूछा—"तुम्हारा घर कहां है?"

बेचारे फ़कीर के मुँह से आवाज़ नहीं निकली। इस तरह अचानक अपनी प्यारी पुत्री को पाकर रामप्रताप शीघ्रता से घर पहुँचने के लिए बेचैन हो उठा था। विन्ध्येश्वरी मोटर में नहीं थी, वह अपने हाउस-बोट में ही थी। उसे यह शुभ समाचार सुनाने की प्रबल उत्सुकता में प्रमीला के तीन महीने के अज्ञातवास की आश्चर्य-मय कहानी सुनने का कौतूहल भी रामप्रताप को बूढ़े के पास नहीं रोक सका। शायद उसने यह भी अनुमान किया हो कि बूढ़ा कहीं आसपास ही रहता होगा, प्रमीला की मदद से उसका घर पीछे भी मालूम हो जायगा।

मोटर चल दी और देखते ही देखते बूढ़े हुक्मत के कोमल हृदय पर एक साथ सैकड़ों हथौड़ों की कड़ी चोट मारकर वह दूर पर जाकर ओझल हो गई। बूढ़ा हुक्मत अभी तक गुलाब की गाड़ी को उसी तरह पकड़े हुए खड़ा था। इस अचानक हो-गए चील-झपाटे का मतलब अभी तक उसकी समझ में नहीं आया था। अब मोटर के आंखों से ओझल हो जाने पर उसने अनुभव किया कि "हाय! मुझ अभागे का तो सभी कुछ लुट गया!"

अभागे हुक्मत के दिल से बड़ी दर्द-भरी आवाज़ निकली—"उफ़!—फ़!!" इसके साथ ही अपना सिर पकड़ कर वह ज़मीन पर बैठ गया।

(५)

बूढ़ा हुक्मत फिर से अपने रोज़ के अभ्यस्त स्थान पर लेटा हुआ दिखाई दिया। मालूम नहीं, वह वहां पहुँचा किस तरह। अभागा हुक्मत अब भीख नहीं माँगता। अब वह किसके लिए भीख माँगे? जिसके लिए वह बुढ़ापे में पहुँच कर भी जवान बन गया था, वह तो इतना शीघ्र जहां से आई थी, वहीं चली गई। फिर वह किस के लिए भीख माँगे; अपने लिए?—निःसन्देह सारी दुनिया 'अपने लिए' जीती है; मगर अभागे हुक्मत ने मोह से, अज्ञान से अथवा वर्षों तक दिल ही में ढके रहने वाले वात्सल्य के अचानक प्रादुर्भाव से जिसे एकदम अपना बना लिया था—वह तो चली गई। फिर उस का अपनापन ही कहां रह गया। काश कि वह फिर से इस 'अपनेपन' को संकुचित कर सकता।

हुक्मत दौलत का फकीर तो पहले ही था, अब दिल का भी फकीर हो गया। अपनी ज़िन्दगी-भर में इस दुनियां को वह जिस शुष्क-रूप में देखता रहा है, उस की अपेक्षा तो, एक दिन हुक्मत ने अचानक अनुभव किया कि, यह दुनियां बहुत अधिक हरी और कोमल है; परन्तु इतना शीघ्र हुक्मत को यह भी अनुभव हो गया कि दुनियां का यह हरापन कितना अधिक क्षणिक और विमोहक है और इस का परिणाम कितना करुण है।

सरदियों की तीन लम्बी-लम्बी रातें और तीन छोटे-छोटे दिन निकल गए। हुक्मत ने न कुछ खाया, न कुछ पीया। एक

बड़ी-सी चट्टान की ओट में अपने सम्पूर्ण फटे हुए चीथड़ों को लपेट कर वह इस तरह पड़ा था, जैसे उस में जीवन ही न रहा हो। यह चट्टान हवा के झोकों से उस की रक्षा करती थी, और वृक्ष उसे ओस से बचाते थे। अब वह इतना दुर्बल हो गया था कि सड़क से झोंपड़ी तक जाना भी उस के लिए दूभर हो गया था। बूढ़ा हुक्मत चुपचाप लेटा हुआ था। उस के ऊपर जो चट्टान थी, उसी पर बैठ कर आज से सिर्फ़ तीन ही दिन पहले उस की सुन्दर गुलाब मचल उठी थी—"ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी!" आज हुक्मत गुलाब के लिए गाड़ी तो खरीद लाया है, और वह गाड़ी उस के पास ही पड़ी है, मगर इस गाड़ी के बदले में वह अपनी गुलाब को खो आया है। अब बूढ़े के मचलने की बारी है। मगर उस के मचलने की परवाह ही कौन करता है!—ओफ़, उस अभागे की 'गुलाब' कहां गई?

तीसरे दिन आसमान में फिर से बादल घिर आए। रात होने से कुछ समय पहले ही भयङ्कर वर्षा होने लगी।

कभी तुम ने इस निष्प्राण प्रकृति को रोते हुए भी देखा है? सचमुच कभी-कभी यह प्रकृति रोती भी है और इस का रोना बहुत करुण होता है। जब यह रोने लगती है, तो सारा जगत सन्नाटा थाम लेता है। जीव-जन्तु सब चुप हो जाते हैं, पेड़-पत्ते निश्चल हो कर खड़े हो जाते हैं, कभी-कभी तो हवा भी दम साध लेती है, और तब अबाधित-रूप से यह प्रकृति घण्टों तक "सॉय, सॉय" करके रोती है। यदि कभी बरसात की किसी रात में नींद

से जग कर तुम ने प्रकृति का यह महान रुदन सुना है, तो अवश्य ही तुम ने देखा होगा कि प्रकृति के इस रुदन में सब कहीं सन्नाटा छाया होता है, यहां तक कि पशु-पक्षी भी नहीं बोलते। और सब को चुप करके सिर्फ़ यह निष्प्राण प्रकृति एक-सी आवाज़ में टप टप आंसू टपकाती है।

आज बूढ़े हुक्मत के साथ प्रकृति भी रोई और खूब जी भर कर रोई। बूढ़े को इस समय तक ज्वर चढ़ आया था। आस्मान से पानी के साथ-साथ बरफ भी पड़ने लगी थी, और इधर अभागा हुक्मत बुखार की गरमी में उनींदा-सा होकर बड़बड़ा रहा था। बूढ़ा ख्वाब देखने लगा—"उस की गुलाब एक दम बड़ी हो गई और उस का ब्याह हो गया है! आहा, हुक्मत की गुलाब का ब्याह हो गया, और उस का पति इतना धनी है कि उस के पास कई मोटरें हैं!"

मगर बूढ़े को स्वप्न में भी देर तक यह खुशी नसीब न हुई। उस का ख्वाब जारी था—"गुलाब को ससुराल गए बहुत दिन बीत गए। वह फिर कभी लौट कर नहीं आई। बूढ़े ने उसे वापस लाने के लिए एक गाड़ी खरीदी है; मगर गुलाब की ससुराल वाले उसे लौटने नहीं देते।"

बुख़ार की बेचैनी में हुक्मत ने जो करवट बदली, तो उस का हाथ गुलाब की गाड़ी से जा टकराया। बूढ़े की नींद उचट गई। वह बड़े कातर स्वर में बड़बड़ाया—"गुलाब! बच्ची गुलाब!!"

वर्षा अभी तक ज़ोरों पर थी। सड़क का पानी फैल कर

चट्टान के पास आ रहा था। हुक्मत ने अनुभव किया कि उस के कपड़े गीले हो रहे हैं। चारों ओर घना अन्धकार था। हुक्मत सिकुड़ कर चट्टान से लग गया। चट्टान का सिरा आगे की तरफ़ बढ़ा हुआ था, इसलिए वर्षा से उस की थोड़ी-बहुत रक्षा हो गई। वर्षा पड़ने की यक-सां आवाज़ ने माता की प्यार-भरी लोरियों के समान उसे पुनः अर्धसुप्त दशा में कर दिया। वह फिर से .ख्वाब देखने लगा—"गुलाब अपने ससुराल में उसे बहुत याद करती है; मगर ससुराल वाले उसे बाप के घर जाने नहीं देते। उन्हों ने गुलाब की गाड़ी को खाली ही वापस लौटा दिया है, और कहला भेजा है कि हम गुलाब को एक फकीर के घर नहीं भेज सकते!" हुक्मत फिर से जाग उठा। उसे ध्यान आया—"वह तो सचमुच फकीर है।" उस के मुँह से एक गरम सांस निकाली और अब के वह बिल्कुल धीरे से गुनगुनाया—"गुलाब! मेरी गुलाब!"

बूढ़े फकीर का बुखार बढ़ने लगा; मगर उसे देखनेवाला वहां कोई नहीं था।

(६)

क्रमशः यह गीली रात समाप्त हुई। सूर्योदय के साथ ही साथ वर्षा भी समाप्त हो गई। परन्तु सरदी बहुत अधिक बढ़ गई थी और साथ-ही साथ अभागे हुक्मत का बुखार भी बढ़ रहा था। तेज़ बुखार की बेहोशी में वह रह-रह कर कराहने लगा था।

सरदियों के मौसम में इस सड़क पर बहुत आवागमन नहीं होता, फिर भी सड़क पर से जो दो-चार काश्मीरी किसान गुज़रते थे,

उनका ध्यान इस अभागे फकीर की तरफ अवश्य जाता था। कुछ किसानों ने कौतूहल-वश उसे घेर भी रक्खा था।

दोपहर होने से कुछ समय पूर्व श्रीनगर की तरफ़ से एक मोटर आकर इसी स्थान पर रुक गई। इसमें प्रमीला को साथ लिए हुए विन्ध्येश्वरी और रामप्रताप नीचे उतर पड़े। दूर ही से गुलाब ने उँगली उठाकर अपनी मां को दिखाया—"मेरी गाड़ी वो है!"

अभागा हुक्मत तो चीथड़ों के ढेर के अन्दर छिपा हुआ था, वह बेचारी उसे कैसे देख पाती। इन बाबू लोगों को देखकर सब काश्मीरी सलाम करके एक तरफ़ हट गए। रामप्रताप उस बूढ़े फकीर को कुछ पुरस्कार देने की इच्छा ही से गुलाब की मदद लेकर यहाँ आपहुँचा था। मगर यहाँ के आसार देख कर फकीर के लिए उस का हृदय कुछ चिन्तित-सा हो गया।

तीनों जने बीमार हुक्मत के पास पहुँचे। रामप्रताप ने पास ही खड़े हुए एक काश्मीरी किसान से पूछा—"क्यों, क्या बात है?"

उसने जवाब दिया—"कुछ नहीं हजूर! एक फकीर था, सरदी लगने से बीमार हो गया है।"

रामप्रताप के कुछ और पूछने से पूर्व ही प्रमीला की निगाह बूढ़े हुक्मत पर पड़ गई। वह खुशी से भर कर चिल्लाई—"बुड्ढा!" इसके साथ ही अपनी मां का अंचल पकड़कर वह उसे हुक्मत के बहुत निकट ले चलने के लिए खींचने लगी।

इस बेचैनी की दशा में भी हुक्मत ने मानों गुलाब की आवाज़ सुन ली। उसने अपनी आँखें खोल दीं। गुलाब को देखते ही उसके मृतप्राय-शरीर में प्रसन्नता की बिजली-सी घूम गई। वह धीरे-से कुछ बोला, परन्तु किसी को कुछ समझ न आया। गुलाब अब उसके बहुत निकट आ गई थी। अपने 'बुड्ढे' को इस दशा में देखकर बालिका का अबोध हृदय भी सहम गया। वह उदास-सा चेहरा बनाकर हुक्मत के बुझते हुए दीपक-से चेहरे को देखने लगी।

इसी समय रामप्रताप ने निकट आकर हुक्मत से उसका हाल पूछा; मगर हुक्मत ने उनका प्रश्न सुना ही नहीं। दीआ बुझ रहा था। उसके लिए तेल आया तो सही, परन्तु बहुत देर में। रामप्रताप और विन्ध्येश्वरी ने देखा कि बूढ़ा नींद में ही कुछ गुनगुना रहा है। इस गुनगुनाहट में भी 'गुलाब' का शब्द उन्हें स्पष्ट-रूप में सुनाई पड़ा। शायद वह अपने परवरदिगार खुदा से उसके लिए प्रार्थना कर रहा था; मगर प्रमीला के मां-बाप को अभी तक तो यह भी मालूम नहीं था कि 'गुलाब' उन की कन्या का ही नाम है!

धीरे-धीरे हुक्मत बेहोश हो गया, और फिर उसकी यह बेहोशी कभी न टूटी।

क, ख, ग

क, हत्या

सांझ का झुटपुटा समय था। पंजाब के पश्चिमोत्तर भाग के उजाड़ इलाक़े में एक मालगाड़ी धुआं उड़ाती हुई चली जा रही थी। दिन भर पूरी प्रचण्डता से तप कर सूर्य अस्त होने लगा था। हवा बिलकुल बन्द थी, मानो आस्मान का दम घुट रहा हो। वायु-मण्डल में धूल इस तरह छाई हुई थी, जैसे किसी हिन्दू जोगी ने अपने गोरे शरीर पर भस्म रमा रक्खी हो। ड्राइवर और गार्ड दोनों अपनी-अपनी जगह बैठे ऊँघ रहे थे। यह लाइन बहुत चलती-हुई नहीं है। दिन-भर में भूली-भटकी सिर्फ़ दो-चार गाड़ियां खट-

खट करती हुई इधर से उधर निकल जाती हैं। इस कारण न गार्ड को चिन्ता थी और न ड्राइवर को परेशानी। केवल इंजिन के पेट में कोयला झोंकने वाला नौजवान कुली इस समय भी इंजिन के बाहर की पटरी पर, रेलिङ्ग के सहारे खड़ा होकर, बेढंगी कसरत कर रहा था। शायद वहां उसे कुछ हवा मालूम हो रही हो।

रेलिंग के सहारे इधर-उधर झूलता हुआ कुली अचानक चिल्ला उठा—"डिराइवर! डिराइवर! गाड़ी रोको। लाइन पर कोई लेटा हुआ है।"

ड्राइवर साहब चौंक कर खड़े हो गए। उन्हों ने इंजिन की शीशे वाली बड़ी-बड़ी आंखों से सामने की ओर देखा—सचमुच कोई शख़्स एक मैली चादर ओढ़े हुए बिल्कुल बेफिक्र होकर ठीक पटरी पर सोया हुआ है। वह सीटियां देता हुआ बड़बड़ाया—"इस कम्बख़्त को सोने के लिए यही जगह मिली थी!"

परन्तु पटरी पर लेटा हुआ आदमी हिला तक भी नहीं। ड्राइवर झुँझला कर बोला—"कुचल जाने दे साले को!" मगर साथ-ही साथ उस के कुशल हाथों ने गाड़ी को रोकने के लिए ब्रेक भी खुदबखुद कस दिया। गाड़ी की चाल एकदम धीमी पड़ गई। कुली ज़ोर ज़ोर से हँस कर बोला—"बचुआ लाइन पर ऐसे मज़े में सो रहे हैं, जैसे ससुराल में आए हुए हों!" लोहे का वह विशाल-काय चलता-फिरता राक्षस इस समय भी तीक्ष्ण स्वर में एक-पर-एक ललकार दे रहा था। परन्तु आश्चर्य यह कि पटरी पर सोया हुआ आदमी अब भी उठा नहीं।

गाड़ी उस सोए हुए आदमी के अत्यन्त निकट आकर रुक गई, मगर चादर में कोई गति दिखाई नहीं दी। ड्राइवर अक्लमन्द था। वह समझ गया कि दाल में कुछ काला है। इस समय तक गार्ड भी इंजिन के निकट आ गया था। दोनों ने एक साथ उस ढेर के निकट जाकर देखा—चादर पर जगह-जगह लाल दाग़ थे। उन पर मक्खियां भिनभिना रही थीं। गार्ड को मामला समझने में देर न लगी, परन्तु कुली इतना तीव्रबुद्धि न था, वह कौतूहल के मारे पागल हो रहा था। उस ने चादर खींच कर अलग कर दी। देखा, उस के नीचे दस-ग्यारह बरस के एक सुन्दर बालक की लाश पड़ी हुई है!

मामला एकदम से संगीन था। गाड़ी उस लाश को ले कर आगे बढ़ी। अगला स्टेशन बहुत दूर नहीं था।

उस स्टेशन का नाम मुझे स्मरण तो है, परन्तु वह इतना बेढंगा है कि उसे छिपाए रखना ही अधिक उपयुक्त है। स्टेशन के आस-पास कोई विशेष आबादी नहीं है। स्टेशन इतना नगण्य है कि उसके सिगनल के दोनों हाथ हर समय एक ही साथ नीचे की तरफ़ झुक रहते हैं। गार्ड ने अपने डिब्बे में से झांक कर देखा कि इस उजाड़ और सुनसान स्टेशन पर पांच-सात आदमियों की एक टोली इकट्ठी है। इस छोटे-से स्टेशन पर सांझ के समय पांच सात आदमियों का जमा होना भी एक आश्चर्य-जनक घटना थी। गाड़ी प्लेटफार्म पर पहुँच गई, परन्तु वह टोली अपने ही काम में व्यस्त रही। गार्ड ने गाड़ी से उतर कर देखा कि इस

स्टेशन से तीन मील की दूरी पर जो क़स्बा है, उस का सरकारी डाक्टर एक बीस-बाईस बरस के नौजवान हिन्दू को पकड़े हुए खड़ा है। वह नौजवान बहुत घबराया हुआ प्रतीत हो रहा था।

सिक्ख गार्ड ने नज़दीक आ कर स्टेशन-मास्टर से पूछा—"क्या मामला है?"

स्टेशन मास्टर ने कहा—"थोड़ी देर हुई डाक्टर साहब अपने दो-चार दोस्तों के साथ सैर के लिए जा रहे थे। राह में उन्हें यह नौजवान अकेला आता हुआ मिला। डाक्टर साहब को देख कर यह चौंका। इस के कपड़ों पर खून के दाग़ थे, अतः डाक्टर को इस पर सन्देह हो गया, और वह इसे अपने साथ पकड़ लाए।"

गार्ड ने कहा—"मेरा मामला और भी संगीन है। हमें लाइन पर एक लाश मिली है!"

इसी समय इंजिन का कुली गाड़ी में से वह नन्हीं-सी लाश उठा कर प्लेटफार्म पर ले आया। इस लाश को देखते ही वह नौजवान जिसे डाक्टर साहब ने पकड़ रखा था, भय से चीख उठा। लोगों ने पहिचाना—वह नौजवान और यह मरा हुआ बालक दोनों एक ही घर में रहने वाले चचेरे भाई थे। मामला संगीन होने के साथ-ही-साथ पेचीदा भी हो गया।

डाक्टर साहब थे तो गांव के डाक्टर, मगर समझदार काफ़ी थे। उन्हें पहले ही से यह सन्देह था कि यह नौजवान कोई असाधारण काम करके आ रहा है। अब यह लाश देख कर उन्हें विश्वास हो गया कि इस बालक की हत्या इसी व्यक्ति ने की है,

परन्तु ये दोनों तो चचेरे भाई हैं, फिर बड़ा भाई छोटे भाई की हत्या क्यों करेगा ? तथापि इस समस्या पर अधिक गहरा विचार न करके डाक्टर साहब ने उस नौजवान को डांट कर कहा—"सच बता ! तूने इस बच्चे का खून किस लिए किया है ?"

वह कमज़ोर दिल का नौजवान डर से कांपने लगा। उस से कोई जवाब न दिया गया।

लाइन के काँटे बदलने वाला स्टेशन का बूढ़ा पोर्टर बड़ा रहमदिल था, उसे इस जवान पर दया आ रही थी। उसने कहा—"हजूर यह भी तो नामुमकिन नहीं कि किसी दूसरे आदमी ने इन दोनों भाइयों को एक साथ मारने की कोशिश की हो, परन्तु जवान होने से यह तो भाग आया हो वह बच्चा भाग न सका हो।"

डाक्टर ने डाँट कर कहा—"चुप रहो। तुम से कौन पूछता है ! क्या इस आदमी की अपनी ज़बान नहीं है ?"

बूढ़ा पोर्टर चुप हो रहा।

अब ड्राइवर की अक्ल काम आई। उसने कहा—"इस बूढ़े की बात भी नामुनासिब नहीं है। इस जवान के कपड़ों पर भी खून के दाग़ हैं। सम्भव है कि किसी ने इसे भी पीटा हो। अब देखना यह चाहिये कि इसके शरीर पर भी कोई चोट का निशान है या नहीं।"

यह बात सब लोगों को ठीक जँची। डाक्टर साहब तो मौजूद थे ही। जवान का जिस्म बड़ी होशियारी के साथ टटोला

गया, परन्तु उसके शरीर पर चोट का एक भी चिह्न नहीं था। आश्चर्य तो यह कि उसके ऊपर वाले कपड़ों पर तो .खून के दाग़ थे, परन्तु अन्दर के कपड़ों पर किसी प्रकार का कोई निशान नहीं था। लोगों को अब यह विश्वास हो गया कि बालक की हत्या में इस बड़े भाई का भी हाथ अवश्य है।

अब सिक्ख गार्ड की ताक़त काम आई। उसने आव देखा, न ताव; झट से उस कमज़ोर-से जवान का गला दोनों हाथों में पकड़ लिया और कहा—"सच बता, तूने इस बच्चे को क्यों मारा है। नहीं तो, याद रख, तेरा गला भी अभी घोंट देता हूँ।"

वह नौजवान चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा। गार्ड ने देखा, यह आदमी जवाब नहीं देता, उसने उसका गला थोड़ा-सा दबा दिया। जवान ने चीख़ मारकर कहा—"गला छोड़िए। मैं अभी बताता हूँ।"

गार्ड ने उसका गला ढीला तो कर दिया, मगर अपने फौलादी पंजों को वहां से उठाया नहीं। खूनी बिल्कुल कच्चा और कमज़ोर हृदय का था, इसलिए उसने यह बहुत शीघ्र स्वीकार कर लिया कि हत्या मैंने ही की है।

इंजिन का मुसल्मान कुली हैरत में आकर बोला— "लाहौल बिला क़ूवत!"

गार्ड, डाक्टर और स्टेशन-मास्टर इन तीनों थोड़ी-बहुत अंग्रेज़ी पढ़े लिखे व्यक्तियों ने जिरह करके इस आदमी से जो बयान लिया, वह संक्षेप में इस प्रकार है—

"हम दोनों चचेरे भाई हैं। इस बालक के पिता का देहान्त हो चुका है, माता जीवित है, भाई या बहन कोई नहीं। इसके पास ७० बीघा ज़मीन है। मैं बड़ा ग़रीब हूँ। आजीविका का कोई साधन मेरे पास नहीं। किसी ने सुझाया था कि यदि यह बालक मर जाय, तो इसकी जायदाद पर तुम्हारा हक़ हो जायगा। यह बात मुझे जँच गई। आज दोपहर को मैंने इस से कहा कि आओ, अपनी ज़मीन पर ख़रबूजे खाने के लिए चलें। यह बड़ी खुशी से तैयार हो गया। रेलवे-लाइन के नज़दीक वाले जंगल में पेशाब के बहाने मैं ज़रा पीछे रह गया, और अपना चाकू निकाल कर इसके गले पर वार किया। यह चिल्लाया, मगर मैंने दो-तीन वार और करके इसे ख़तम कर दिया। लाइन नज़दीक थी। मैंने इसे लाइन पर इस ग़रज़ से रख दिया कि रात की मालगाड़ी से यह लाश कट जायगी, तब लोग यही समझेंगे कि रेल के नीचे आकर ही इस बच्चे की मौत हुई है।"

इंजिन का कुली ऊँचे स्वर में चिल्ला उठा—"खुदा है!"

ड्राइवर ने पूछा—"क्यों ?"

कुली ने कहा—"रोज़ की तरह अगर आज भी हमारी गाड़ी रात को ही आती, तो यह मामला खुलता ही नहीं। ख़ुदा की मरज़ी थी कि मुझे यह लाश पहले ही से दिखाई पड़ गई।"

इसी समय सिक्ख गार्ड ने सीटी देकर कहा—"चलो, हम किसी और लाश की तलाश में चलें। इस लाइन पर लाशें इस अधिकता से मिलती हैं, जिस तरह हिन्दोस्तान में भिखारी!"

ख, शहादत

इस बीसवीं सदी में अब तक भी दुनियां में अनेक ऐसे अन्धेरे कोने बाक़ी हैं, जहां मनुष्यों की आबादी तो है, मगर नये युग का प्रकाश नहीं पहुँच पाया है। इन स्थानों पर अभी तक बाबरशाह के ज़माने की सदी ही विद्यमान है। यहां न रेल है, न डाक और न तार। लोग उसी तरह मिट्टी की दीवारों पर छप्पर डालकर रहते हैं। उनकी सम्पत्ति भी बिल्कुल पाषाणयुग की है— अर्थात् कुछ भैंसें, गौएँ, बैल और कुछ कमज़ोर घोड़े। पंजाब के पश्चिमोत्तर भाग के एक ऐसे ही अन्धेरे कोने में रमज़ान का घर है। रमज़ान नौजवान है। दिल का साफ़, जिस्म से तन्दुरुस्त और मिज़ाज का खुश। उसका घर एक ऐसी ही छोटी-सी बस्ती में होते हुए भी वह स्वयं वर्तमान सभ्यता की पहुँच से बाहर नहीं है। वह रेल पर सवार होकर लायलपुर तक का चक्कर लगा आया है। लायलपुर रहते हुए दो-एक दफ़ा डाकख़ाने में जाकर इसने पोस्टकार्ड भी खरीदे हैं। पोस्टेज की इन्तज़ार में खिड़की के किनारे खड़े रहकर उसने यह भी देखा है कि डाकख़ाने के मुन्शी किस प्रकार खट-खट करके तार देते हैं। वह पूरे छः महीने तक लायल-पुर में मज़दूरी करता रहा है। आज वह चाँदी के ७० चमकते हुए रुपये अपनी धोती के पल्ले में बाँध कर घर लौट रहा है।

मुद्दत के बाद घर लौटते हुए आदमी को जो प्रसन्नता अनु-भव होती है, वह सबसे अधिक पवित्र, मीठी और गहरी प्रसन्नता है। नौजवान रमज़ान गांव की पगडण्डी पर चलते हुए इसी खुशी

में मस्त होकर 'ढोला का गीत' गारहा था। उस उजाड़ इलाक़े में यह पगदण्डी साँप की तरह टेढ़ी-मेढ़ी होकर और मिट्टी के टीलों के कारण लहरों की तरह ऊँची-नीची होकर बिछी हुई है। दोनों ओर कीकर, सरकण्डा और करीर के झाड़झँखाड़ हैं। रात का समय था। दूर पर सैकड़ों गीदड़ एक साथ चिल्ला रहे थे। पास की नहर का बाँध तोड़कर कहीं-कहीं पानी इस पगडण्डी के नज़दीक के गढ़ों में आकर भर गया था। इन गढ़ों में मेंढ़क टर्रा रहे थे। पगडण्डी पर मच्छरों की फ़ौजें बैण्ड बजा रही थीं। इस गीदड़ों की चिल्लाहट, मेढ़कों की टर्राहट और मच्छरों की भिन-भिनाहट में रमज़ान की ऊँची तान एक विशेष समा बाँध रही थी। रमज़ान आज खुश था। इतना खुश था कि उसकी खुशी का अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। उसके हाथ में एक मज़बूत डण्डा था, और पीठ पर एक चादर के पल्ले में घर के बच्चों के लिए कुछ मिठाई और खिलौने बँधे हुए थे।

रमज़ान का गाँव बहुत ही छोटा है। एक बड़े-से टीले की ओट में वह आठ-दस कच्चे घरों की बस्ती बसी हुई है। इस टीले से उतर कर जब रमज़ान गांव के निकट पहुँचा, तब उसे अपने पीछे की एक झाड़ी में से सरसराहट की आवाज़ आई। रमज़ान को सन्देह हुआ कि कोई मेरा पीछा कर रहा है। रमज़ान ने ज़ोर ने कहा—"होशियार!"

सब ओर पहले की तरह सन्नाटा छाया रहा। कहीं से कोई आवाज़ नहीं आई। दो-एक मिनट तक वहीं खड़ा रहकर रमज़ान

आगे बढ़ा।

रमज़ान अपने घर पहुँचा। रात काफ़ी बीत चुकी थी। सब लोग खा-पीकर सो गए थे। केवल उसका बूढ़ा बाप अब भी चारपाई पर बैठ कर हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। बाहर से पुकार सुनकर बूढ़े ने दरवाज़ा खोला। अचानक अपने पुत्र को देख कर उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। रमज़ान के बच्चों को छोड़कर और सब लोग जाग गए। उसकी माँ, उसकी दो बहनें और उसकी पत्नी। घर में नये सिरे से जीवन का संचार हो गया। सब लोग खूब दिल खोल कर रमज़ान से मिले।

और-और बातों के बाद रमज़ान ने अपनी चादर का पल्ला खोला। अन्दर से निकले—कुछ बूँदी के लड्डू, कुछ लकड़ी के खिलौने और दो-एक रबड़ की सस्ती गेंदें। रमज़ान ने अपनी पत्नी से पूछा—"मुन्नू कहां है ? उसके लिए ये खिलौना लाया हूँ।"

मुन्नू रमज़ान के छोटे लड़के का प्यार का नाम था। रमज़ान को उससे असीम स्नेह था। मुन्नू अभी तक बेहोश-सा सोया हुआ था। पत्नी ने कहा—"वह सोया हुआ है। कहो तो जगा दूँ।"

रमज़ान ने कहा—"नहीं, सोया है तो सोया रहने दो। सवेरे यह सामान उसे दे दूँगा।"

थोड़ी देर में सब लोग सो गए। रमज़ान ने अपने रुपये घर के अन्दर एक घड़े में रख दिए थे।

रात के तीसरे पहर रमज़ान का बूढ़ा बाप घर के अन्दर से कुछ आहट पाकर जाग उठा। अपना गला साफ़ करके उसने ज़ोर से

कहा —"कौन है ?"

इसके अगले ही क्षण घर में से पांच-छः मिट्टी घड़े एक साथ गिरने की ऊँची आवाज़ आई। रमज़ान जाग गया। घर की औरतें भी जाग गईं। अन्दर जाकर देखा तो मिट्टी की दीवार में एक बड़ी-सी सेंध लगी हुई है। घर का सामान चुराया तो नहीं जा सका, परन्तु वह सब अस्तव्यस्त होकर बिखरा पड़ा है। रमज़ान भी सेंध में-से होकर बाहर निकल आया। उसे दिखाई दिया कि दो-एक आदमी भागे चले जा रहे हैं। रमज़ान चिल्लाया—"चोर! चोर!" इसके साथ ही वह उनके पीछे दौड़ा। आस-पास के सब लोग भी जाग गए थे, उन्हों ने भी रमज़ान का अनुसरण किया।

दोनों चोर आगे-आगे थे, रमज़ान उनके पीछे, और अन्य ग्रामीण उसके पीछे। काली अँधेरी रात थी। उस उजाड़ प्रान्त की कांटेदार झाड़ियों को रौंधते हुए ये सब लोग भागे जा रहे थे। नाले के किनारे पहुँच कर आगे दौड़ने के लिए जगह न मिलने के कारण एक चोर रुका। इसी समय रमज़ान ने उसे मज़बूती से पकड़ लिया। रमज़ान चिल्लाया—"दौड़ो, दौड़ो, चोर पकड़ा गया।"

अन्य ग्रामीण अन्धकार के कारण बहुत पिछड़ गए थे। अब रमज़ान की आवाज़ सुनकर वे भी उसी तरफ़ भागे।

इसी समय पहला चोर लौटा, उसके पास एक लम्बा छुरा था। यह छुरा उसने पूरे ज़ोर के साथ रमज़ान की पसली में

मारा। छुरा इतने ज़ोर से अन्दर धँसा कि वह चोर फिर उसे बाहर भी न निकाल सका। रमज़ान के गले से एक तेज़ चीख निकली। इस घायल अवस्था में भी रमज़ान ने अपने दांतों से चोर की अंगुली को इतने ज़ोर से काटा कि वह उसके हाथ से कट कर अलग हो गई, परन्तु अगले ही क्षण रमज़ान निस्तेज हो गया। दोनों चोर भाग गए।

ग्राम-भर के लोग उस अन्धेरी और भयानक रात में नाले के किनारे जमा हुए। रमज़ान इस समय अन्तिम श्वास ले रहा था। उसका बूढ़ा बाप भी रोते-रोते वहां पहुँचा। रमज़ान को अब भी थोड़ा होश था। उसने कहा—"बाबा, रोओ नहीं!"

सब ग्रामीण हतबुद्धि-से होकर आँसू बहा रहे थे। दूर पर ग्राम से रो-रोकर आती हुई औरतों का करुण-क्रन्दन सुनाई दे रहा था। यह करुण ध्वनि क्रम-क्रम से और भी समीप आती जा रही थी। इसी समय रमज़ान ने धीमे स्वर में कहा—"बाबा, एक बात का ख़्याल रखना। ये दोनों आदमी किसी दूसरे इलाके के हैं। हमारे आस पास के नहीं हैं। यह ख़्याल रखना कि इस घटना के कारण मेरे पीछे किसी पड़ोसी पर कोई आफ़त न आए।"

—थोड़ी देर में वीर रमज़ान का शरीर प्राणशून्य होगया।

ग, बलिदान

देवेन्द्र एक धनी ज़मींदार का तरुण वयस्क पुत्र था। इस के पिता अपनी ज़मींदारी के एक बढ़िया बँगले में रहते थे। उनका यह बँगला रेलवे स्टेशन के बहुतदूर नहीं था। देवेन्द्र को उन्हों ने

शिक्षाप्राप्ति के लिए लाहौर भेज रक्खा था, परन्तु अपनी अधिकांश छुट्टियां वह अपनी ज़मींदारी में ही काटा करता था।

देवेन्द्र आजकल लाहौर के गवर्नमेण्ट कालेज के तीसरे वर्ष में पढ़ता है। कुछ दिन हुए वह बड़े दिनों के अवकाश में अपने घर गया था। वहां उस के साथ एक घटना घटी थी। देवेन्द्र के कोमल हृदय पर इस घटना का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है।

देवेन्द्र जिस समय अपने एक नौकर के साथ घर के दरवाज़े पर पहुँचा, उसी समय घर में से एक बहुत सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट कुत्ता भौंकता हुआ बाहर निकला। देवेन्द्र इस आवाज़ से कुछ घबराया ही था कि नौकर ने कुत्ते को पुचकारा—"मोती! मोती! पुच्! पुच्!"

मोती इस समय तक बाहर आ गया था। देवेन्द्र को आज उसने पहली ही बार देखा था, फिर भी वह अजान पशु यह समझ गया कि देवेन्द्र को भौंक कर उसने कुछ ठीक नहीं किया। वह क्षमाप्रार्थी नेत्रों से देवेन्द्र की ओर देखते रह कर अपनी पूँछ हिलाने लगा, परन्तु देवेन्द्र को अब इस ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं थी। वह अपनी बहनों और छोटे भाइयों से घिर गया था।

भोजन के समय देवेन्द्र को मोती के पुनः दर्शन हुए। देवेन्द्र जब अपने खाने के कमरे में गया, तब मोती वहां पहले ही से विराजमान था। देवेन्द्र को आता देख वह अदब के साथ उठा और देवेन्द्र के बैठ जाने पर बैठ गया। देवेन्द्र भोजन करने लगा, उसकी छोटी बहिन शची परोसने का काम कर रही थी। मोती

सकाम भाव से देवेन्द्र के हिलते हुए जबड़ों की ओर देखने लगा। आज भोजनालय में बहुत बढ़िया-बढ़िया माल परोसा जा रहा है, मोती भी यह बात समझ गया था। देवेन्द्र ने अपनी थाली में से आलू के परौंठे का एक बड़ा-सा टुकड़ा तोड़ कर मोती के सामने फेंक दिया। मोती ने पूँछ हिलाते-हिलाते बड़े आनन्द के साथ उस ग्रास को उदरस्थ कर लिया। बस, अब देवेन्द्र और मोती में गहरी दोस्ती हो गई। मोती समझ गया कि यह मेरे नये मालिक हैं।

पूरे नौ दिनों तक मोती देवेन्द्र की छाया बनकर उसके साथ रहा। देवेन्द्र से वह इस थोड़े अरसे में ही इतना अधिक हिल-मिल गया, जितना वह अब तक घर के किसी अन्य व्यक्ति से न हिल सका था। नौ दिनों के बाद देवेन्द्र की बिदाई का समय आया। मोती भी स्टेशन तक साथ-ही-साथ गया। आज वह बेचारा बहुत उदास था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मेरा यह नया मालिक मुझे क्यों इतनी जल्दी छोड़कर चल दिया है। स्टेशन पर घोड़े से उतर कर देवेन्द्र ने मोती को थप-कियां दे-देकर खूब प्यार किया। इसके बाद गाड़ी आने पर वह अन्दर जाकर उसमें सवार हो गया। स्टेशन छोटा था, अतः गाड़ी वहां बहुत थोड़ी देर ठहरती थी। देवेन्द्र के पिता और उसके छोटे भाई तो प्लेटफार्म पर चले गए थे, परन्तु उसके नौकर अन्दर नहीं जा सके थे। इस कारण वे लोग प्लेटफार्म की समाप्ति पर, स्टेशन के लकड़ी से बने जँगले के बाहर, लाइन के बिल्कुल किनारे जाकर

खड़े हो गए थे। मोती भी अन्दर नहीं जा सका था, इसलिए वह भी उसी स्थान पर जा खड़ा हुआ। गाड़ी सीटी देकर चल दी। देवेन्द्र सेकण्ड क्लास के डिब्बे की खिड़की में से मुँह बाहर निकालकर अपने पिता और भाइयों की ओर देखने लगा।

क्रमशः गाड़ी प्लेटफार्म के बाहर आई। देवेन्द्र का सिर अब भी खिड़की से बाहर ही था। उसके नौकरों ने उसे सिर झुका कर प्रणाम किया। देवेन्द्र भी उनके नमस्कारों का हाथ हिला-हिला कर जवाब देने लगा। उफ़, यह क्या! देवेन्द्र को देखते ही वह अबोध और स्नेही मोती रोता हुआ पूरे बल के साथ ऊपर की तरफ़ उछला। गाड़ी काफ़ी तेज़ हो गई थी। बेचारा जानवर खिड़की से टकराकर नीचे गिरा, और उसी क्षण रेल के भारी पहियों ने उसके फूल-से शरीर को दो टुकड़ो में विभक्त कर दिया!

भय का राज्य

नदी-तट पर—

मिदनापुर ज़िले में महीमपुर नाम के एक गाँव के नज़दीक एक छोटी-सी नदी बहती है। साल में अधिकतर यह नदी क्षीण-कलेवरा रहती है, परन्तु कभी-कभी, मसलन बरसात में, गँदला पानी किनारे तक भर कर इस तरह बहने लगता है, जैसे किसी सीमित स्थान की मिट्टी ही पिघल कर भाग चली हो। नदी के किनारे घने-घने पेड़ छाए हुए हैं। सरकंडे, घास, बथुआ आदि इतनी अधिकता से उगे हुए हैं कि उन की घनी हरियावल के कारण नदी का तट बहुत सुहावना हो उठा है।

ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के शासन के अभागे दिनों की एक बरसात का ज़िक्र है। नदी पूरी तरह उमड़ कर बह रही थी। आस्मान में बादल के सफ़ेद टुकड़े छितराए हुए थे। धूप और छाया कबड्डी खेल रही थीं—कभी घाम और कभी सुहावनी बदली। दोपहर ढल चुकी थी। नदी की लहरें एक दूसरे से लड़-झगड़ कर शोर मचा रही थीं। प्रकृति के उस तीव्र और निरन्तर कोलाहल में भी एक विशेष प्रकार के सन्नाटे की उत्पत्ति हो रही थी। इसी समय दस-ग्यारह वर्ष की एक बालिका दो गायों को हाँकती हुई नदी-तट पर पहुँची। बालिका के वस्त्र बिल्कुल सादे होते हुए भी मैले नहीं हैं। उस के गौर मुख पर एक ऐसा स्वाभाविक उल्लास है, जो देखने वालों को हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। बालिका जिस समय नदी-तट पर पहुँची, उस समय छाँह ने धूप पर 'पाला' चढ़ाया हुआ था। आकाश में बादल, चारों ओर बीच-बीच में जङ्गली फूलों का स्वाभाविक शृङ्गार किए हुए घनी हरियाली और सामने वेग से बहता हुआ पानी ! बालिका का दिल ख़ुश होगया। वह तन्मय होकर ऊँची आवाज़ से कोई गीत गाने लगी।

इसी समय अचानक आकर किसी ने उसकी आँखें बन्द कर लीं। बालिका चौंक पड़ी। परन्तु शीघ्र ही सँभल कर अपनी आँखें छुड़ाने का व्यर्थ प्रयत्न करती हुई बोली—"हट, हट, छोड़ दे !—कौन है"

दो-चार क्षण तक बालिका ख़ूब परेशान रही। इसके बाद

ऊँची परन्तु मीठी हँसी से नदी का वह रमणीक तट पुलकित हो उठा। यह हँसी सुन कर बालिका की रही सही घबराहट भी दूर हो गई। वह गम्भीर बन कर बोल उठी—"हट नालायक अज्जी!"

आँखें बन्द करने वाला अजित नाम का एक बालक था। उस की अर्थहीन होने पर भी कवितामय हँसी अभी तक जारी थी। उसने बालिका की आँखें छोड़ दीं। बालिका भी अब धीरे-धीरे मुस्कराने लगी।

इसी समय अजित ने ख़ूब महीन काते गए सूत की एक माला अपनी धोती की फेंट से बाहर निकाली। माला के सूत का रंग लाल था। उसमें बड़ी कारीगरी के साथ जगह-जगह सुन्दर गाँठें दी हुई थीं। बालक ने वह माला अपने हाथ में लेकर कहा—"ले मोहिनी! यह माला तेरे लिए लाया हूँ।"

मोहिनी माला को देख कर जैसे गम्भीर बन गई। उसने कहा—"अज्जी! तुम बिल्कुल निकम्मे हो। तुम्हारी मां दिन-भर मिहनत करके जो सूत कातती है, उसे तुम इस तरह ख़राब करते हो! तुम्हारी माता जी तो अब बूढ़ी हो गईं, उन्हें काम में मदद क्यों नहीं देते?"

बालक अब की हँसा नहीं। मोहनी से वह चार-पांच साल बड़ा है। दोनों दिन-रात के साथी हैं। अजित पर यदि मोहिनी गंभीरता पूर्वक निठल्ला होने का अभियोग लगाती है, तो वह उसे बरदाश्त कैसे करे। उसने बड़ी शांति से, उस शान्ति से जिसका बचपन में न होना ही अच्छा है, कहा—"नहीं, यह सूत मां के

हाथों का काता हुआ नहीं, मेरे ही हाथों का काता हुआ है। मां ने तो सिर्फ़ इस पर गाँठे ही दी हैं।"

मोहिनी खुश हो गई। अजित अपने पेशे में अभी से इतना दक्ष हो गया होगा, उसे यह उमीद नहीं थी। मोहनी चुप हो गई। तब अजित ने चुपचाप वह माला उस के गले में डाल दी। मोहिनी और अजित दोनों मुस्करा उठे। उनकी वह मुस्कराहट बिल्कुल अबोध और पवित्र थी, इसका प्रमाण यह था कि थोड़ी देर हो जाने पर भी यह मुस्कराहट लज्जा के रूप में परिणत नहीं हुई।

ठीक इसी समय नदी की वेगवती लहरों पर तीन मुरग़ाबियां तैरती हुई दिखाई दीं। इनमें एक माता थी, और दो उसके बच्चे। माता आगे-आगे थी और बच्चे उसके पीछे। मां जिस विह्वलता से बार-बार आवाज़ करके और अपनी गर्दन मोड़ कर पीछे की ओर आते हुए अपने बच्चों की तरफ़ देखती थी, उसमें व्यग्रता मूर्तिमान होकर बसी थी, जैसे वह अपने बच्चों को पानी चीर कर तैरते आने के लिए बढ़ावा दे रही हो। मोहिनी और अजित, दोनों चुपचाप इस दृश्य को देखने लगे। यहां तक कि नदी के किनारे हरी-हरी घास चरती हुई दोनों गायों का ध्यान भी इन मुरग़ाबियों की तरफ़ आकृष्ट हो गया। ये मुरग़ाबियां नदी के दूसरे पार से इस पार आ रही थीं। क्रमशः माता किनारे के निकट पहुँच कर पानी से बाहर निकल आई। दोनों बच्चे अभी पानी में ही थे। मां बड़ी बेचैनी के साथ उन्हें देखने लगी। धीरे-धीरे वे दोनों बच्चे

भी किनारे के निकट पहुँच गए।

"छप! छप! छप!"—दनादन बंदूक की तीन गोलियां किनारे पर खड़ी हुई उस मां-मुरग़ाबी पर पड़ीं। उसे चौंकने का मौक़ा भी न मिला और वह मर गई। उसके दोनों बच्चे अभी तक पानी से बाहर न निकल पाए थे। वे भय के मारे चीं-चीं करके रो पड़े। पानी की लहरें उन रोते हुए बच्चों को अपने साथ नीचे की ओर बहाकर ले जाने लगीं।

अजित और मोहिनी ने अपने छोटे-से जीवन में आज तक इतनी ऊँची आवाज़ कभी नहीं सुनी थी। दोनों चौंक पड़े। बालिका तो इतना अधिक भयभीत हो गई कि उसके मुँह से आवाज़ तक निकलना भी असंभव हो गया। इसी वक्त दूर पर, जंगल की घनी हरियाली में से निकलती हुई चार-पांच प्रेत-सी मूर्तियों को देखकर अजित भय से चिल्ला उठा—"भूत!"

मोहिनी ने भी पीछे की तरफ़ मुड़कर देखा। सचमुच पश्चिम की ओर बांस के बहुत-से घने-घने झुरमुटों की ओट से ४-५ प्रेत-मूर्तियाँ-सी निकलकर इसी तरफ़ चली आ रही थीं। मुँह को छोड़कर इनका सारा शरीर बिल्कुल ढका हुआ था। घुटनों से नीचे का भाग चमकीले चमड़े से आवृत था। शरीर पर ख़की कपड़ा सटा हुआ था। सिर पर एक टोकरी-सी रक्खी थी, और इस टोकरी के नीचे जो चेहरा था, वह इतना अधिक 'चिट्टा' था कि उसे अचानक देख कर उस समय के बंगाली उसे कोई बीमारी ही समझते इन सभी के हाथों में लंबी-लंबी बन्दूकें थीं। ये प्रेत-

मूर्तियाँ बड़ी शीघ्रता से उस मृत मुरग़ावी की तफ़र बढ़ी आ रही थीं। मोहिनी यह भयङ्कर दृश्य देखकर संज्ञाहीन-सी हो गई। अजित भी कम भयभीत नहीं था, फिर भी वह बेहोश नहीं हुआ था।

अचानक अजित ने जैसे इन प्रेतों को पहचान लिया। अपने मुँह को बेहोश मोहिनी के कानों के अत्यधिक निकट लेजाकर उसने धीरे से कहा—"मोहिनी! उठो,–उठो। ये भूत नहीं, फिरंगी हैं!"

फिरंगी लोगों का वर्णन अजित गाँव के लोगों से कई बार सुन चुका था, परन्तु उन्हें देखने का अवसर उसे कभी नहीं मिल था। मोहिनी की चेतना धीरे-धीरे जागृत हो गई। इतने में वे चारों-पांचों फिरंगी मुरग़ावी लिए हुए उसी स्थान पर आ पहुँचे। उन्होंने अजित और मोहिनी को घेर लिया। दोनों बालक चुपचाप बैठे रहे। ये फिरंगी इन दोनों बालकों को थोड़ी देर तक इस तरह देखते रहे, जैसे वे दोनों कोई निर्जीव बुत हों। फिरंगी हँस-हँसकर इन बालकों के सम्बन्ध में न-जाने कैसी और क्या आलोचना करते रहे। उन्होंने जब देखा कि ये बालक कुछ भी नहीं बोलते, तो उन उजड्ड फिरंगियों ने मुरग़ाबी के मृत शरीर से बहते हुए खून की कुछ बूँदें इन बालकों पर टपका दीं। दोनों बालक भय से चीख उठे। फिरंगियों ने इस पर एक कहकहा लगाया और अपना शिकार लिए हुए पूर्व की ओर बढ़ गए।

अजित और मोहिनी उठे। वे अभी तक काँप रहे थे। नदी

के जल में कपड़े धो और स्नान करके उन्होंने अपनी गायों की सुध ली। फिरंगियों की बंदूक की भयंकर आवाज़ सुनकर दोनों गउ जंगल में भाग गई थीं। उन्हें ढूँढकर दोनों ने गांव की राह ली। मोहिनी अपने घर को चली गई और अजित अपने घर।

शाही फरमान—

अजित के न तो बाप था, न कोई भाई और न बहिन; सिर्फ़ मां थी। वह भी बिल्कुल बुढ़िया—लाठी टेककर चलती थी। अजित का गाँव महीमपुर था। महीमपुर में अधिकांश घर जुलाहों के थे। अजित के पुरखे भी जुलाहे का काम किया करते थे। उसके पिता का देहान्त हो जाने के बाद से उसकी मां अकेली ही यह पेशा करके उसका तथा अपना पेट पालती थी। अजित की मां बहुत महीन सूत कातती थी और बहुत सुन्दर बुनती भी थी। उसके काम की माँग थी। अतः माँ-बेटे दोनों खुशहाल थे। उनकी आवश्यकताएँ भी बहुत सीमित थीं। वे न किसी के लेने में थे और न किसी के देने में। कुटिया के आंगन में काफ़ी ज़मीन थी। बरामदे में सरकंडे और तागों से बनी एक खड्डी लगी थी। रूई, सूत, कूचियाँ आदि पास के छोटे-से कमरे में रक्खी रहती थीं। यही उनका वर्क-शाप था। आंगन में जो ज़मीन थी, उसमें तरकारियाँ और मौसमी बेलें बो दी जाती थीं। बुढ़िया काम तो थोड़ा करती थी, मगर उसके काम की कद्र थी। अजित अभी बालक ही था, फिर भी उस से बुढ़िया को अपने काम में बहुत

मदद मिलती थी। बूढ़ी मां को यकीन था कि एक दिन उसका अजित इतना अच्छा जुलाहा बनेगा कि मुल्कभर में उसके नाम को रोशन कर देगा।

सांझ के समय बुढ़िया आँगन में करेले की बेलों की जड़ में से घास खोद रही थी कि अजित गीले कपड़े पहने हुए घर में दाखिल हुआ। उसकी घबराहट अभी तक दूर नहीं हुई थी। मां ने उसके गीले कपड़े और उदास चेहरा देखते ही पूछा—"क्यों अज्जी! क्या बात है?"

अजित ने घबराई हुई आवाज़ में कहा—"मा! गांव में फिरंगी आए हैं!"

बुढ़िया ने सुन रक्खा था कि फिरंगी बच्चों को चुरा ले जाते हैं, इसलिए वह भी घबरा गई। उसने पूछा—"वे हैं किस जगह?"

अजित ने नदी-तट वाली सारी घटना मां को सुना दी। बुढ़िया 'हूं-हूँ' करके सारी कहानी सुनती गई; इससे अधिक वह कर भी क्या सकती थी। अचानक बुढ़िया को ख्याल आया कि गाँव के मुखिया ने उसे जो दुपट्टा बुनने दिया था, वह इस समय तक उसके घर पहुँच जाना चाहिए। कोई और दिन होता, तो बुढ़िया अजित के हाथ ही वह दुपट्टा मुखिया के घर भेज देती; मगर आज तो गांव में फिरंगी आए हुए हैं। दुपट्टा कंधे पर डाल कर एक हाथ से लाठी टेकती हुई बुढ़िया अजित के साथ गाँव के मुखिया के घर की तरफ़ चली।

गाँव के मुखिया का नाम था ताराचन्द मुखोपाध्याय। उन दिनों के बंगाली चट्टोपाध्याय को 'चैटर्जी', मुखोपाध्याय को 'मुकर्जी', वसु को 'बोस', वंद्योपाध्याय को 'बैनर्जी', और ठाकुर को 'टैगोर' कहने में आत्मसम्मान अनुभव करना नहीं सीखे थे। ताराचन्द महाशय गाँव में 'मुखोपाध्याय' के नाम से प्रसिद्ध थे। अजित की मां जब मुखोपाध्याय के घर पहुँची, तो उसने देखा कि वहां बड़ी भीड़ जमा है। पूछने पर मालूम हुआ कि शाही फ़रमान लेकर १०-१५ फिरंगी महीमपुर में आए हुए हैं। वे अपने साथ जो फ़रमान लाए हैं, उसमें लिखा है कि भविष्य में महीमपुर की सारी मालगुज़ारी ये फिरंगी लोग ही वसूल किया करेंगे और गांव-भर के जुलाहों से ये फिरंगी जिस प्रकार चाहें, काम ले सकेंगे।

जिस किसी तरह भीड़ में घुसकर बुढ़िया ने देखा कि मुखोपाध्याय के नज़दीक, एक लकड़ी के तख्त पर, पांच-सात फिरंगी बैठे हैं, मुखोपाध्याय बिल्कुल घबराए हुए हैं और ये फिरंगी कहकहा लगा कर हँस रहे हैं। गाँव के लोगों में कुहराम मचा हुआ था। सभी इस परिवर्तन से दुखी थे, मगर वे सब-के-सब भेड़ों के गिरोह की तरह असहाय और कमज़ोर थे।

महीमपुर का शासन, व्यावहारिकरूप में, नवाब के हाथों से निकलकर कम्पनी के हाथ में चला गया और गांववाले अपना यह भाग्यपरिवर्तन उसी तरह देखते रह गए, जिस तरह जानवर एक खू टे से दूसरे खूँटे में बांध दिए जाते हैं।

कोठरी में—

बाहर से आवाज़ आई—"अजित ! अजित !"

अजित जेल की छोटी-सी कोठरी में एक चटाई पर लेटा ऊँघ रहा था। यह पुकार सुनते ही वह चौंक कर जाग उठा। उस के मुँह से अनायास निकल गया—"हुँ ! कौन है ?"

आवाज़ फिर से आई—"अजित ! अजित ! उठो। मैं तुम्हारे लिए भोजन लाई हूँ।"

अजित आवाज़ से पहिचान गया कि मोहिनी आई है। यह जानकर पहले तो उसे बड़ी खुशी हुई, परन्तु फिर उसे ख़्याल आया कि यदि कोई पहरेदार इस समय यहाँ आ जाय तो मोहिनी की बुरी दशा होगी। इसलिए उसने बड़ी गम्भीरता से कहा—"मोहिनी, तुम यहां से भाग जाओ।"

मोहिनी धीरे से हँस पड़ी। उसने कहा—"पहरेदार सो रहे हैं। तुम अपनी कोठरी के झरोखे में से यह भात ले लो। कहाँ है तुम्हारा झरोखा ?"

अजित ने कहा—"दक्षिण की दीवार में, ऊपर की तरफ़।"

थोड़ी देर में वहाँ ढाक के एक बड़े पत्ते पर धरा हुआ भात और उस पर मक्खन की एक टिकिया रख दी गई। अजित ने यह सामान अन्दर सरका लिया।

मोहिनी ने फिर पूछा—"यहां तुम्हें नींद आती है या नहीं ?"

अजित ने बड़े कष्ट से जवाब दिया—"अन्दर असंख्य खटमल और मच्छर हैं। मेरी सारी पीठ चलनी होगई है।"

बालिका की आँखों में आँसू भर आए। परन्तु कहीं अजित को उसके रोने की बात मालूम न पड़ जाय, इस कारण ज़बरदस्ती हँस कर बालिका ने कहा—"अच्छा हुआ ; तुम्हारे शरीर में जो इतना मांस भरा है वह और किस काम आता !"

अजित मोहिनी की यह बात सुन कर जोश में आ गया। उसने कहा—"चार दिन और ठहर जाओ बच्चू; फिर तुम्हारी शरारतों की पूरी सज़ा दूँगा !"

मोहिनी ने याद दिलाया—"धीरे-धीरे बोलो अजित ! कहीं पहरेदार न जग जाँय।"

अजित जैसे थोड़ी देर के लिए यह बात भूल गया था कि वह कोठरी में बन्द है। मोहिनी के मुँह से पहरेदार का नाम सुन कर वह सहम गया। उसने धीरे से कहा—"मोहिनी, भाग जाओ। ये लोग बड़े खूखार हैं !"

बाहर से बहुत ही कोमल आवाज़ आई—"अजित !"

अन्दर से उसी स्वर में जवाब मिला—"मोहिनी !"

इसके बाद फिर सन्नाटा छा गया। अजित समझ गया कि मोहिनी चली गई।

अभी रात का दूसरा ही पहर था। आस्मान में चांदनी खिली हुई थी, फिर भी कोठरी में अन्धकार था। सिर्फ़ दक्षिण-दिशा के छोटे-से झरोखे से चाँद की थोड़ी-सी दिव्य किरणें

कोठरी में पहुँच रही थीं। इसी अधूरे प्रकाश की सहायता से अजित मक्खन मिला-मिला कर भात खाने लगा। उसे बहुत ज़ोर की भूख लग रही थी।

अजित को कोठरी में बन्द हुए आज तीसरी रात थी। ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा दिए गए काम को वह नियत समय में पूरा नहीं कर सका था, इसी कारण उसे एक सप्ताह के लिये 'कोठरी की सज़ा' दी गई थी। वह अभी सोलह साल का बालक ही था, परन्तु ज़माने की ठोकरें खाकर काफ़ी समझ-दार बन गया था। कम्पनी के कारिंदे ने उसकी मां के ज़िम्मे उसकी कार्यशक्ति से बहुत अधिक काम लगा दिया था। इसी कारण बालक होते हुए भी अजित ने जान-बूझ कर माता का काम अपने ज़िम्मे ले लिया था। कोशिश करके उसने कारिंदे के कागज़ों में से मां का नाम कटवा कर अपना नाम लिखवा दिया था, ताकि काम पूरा न होने के कारण यदि कोठरी का क़ैदी बनने की नौबत आए, जिस की उन्हें पूरी सम्भावना थी, तो वह सज़ा उसकी बुढ़िया मां को न भुगतनी पड़े। मां बूढ़ी थी और पुत्र था अनुभवहीन बालक। इसलिए कम्पनी के इस नए बन्दोबस्त के पहले महीने की समाप्ति पर ही जिन अभागे जुलाहों को कोठरी की कैद भुगतनी पड़ी, उन में बालक अजित भी शामिल था।

भात खाकर अजित में कुछ जान आई। कम्पनी के नृशंस कर्मचारी कोठरीवाले कैदियों की दो-दो और तीन तीन दिनों

तक कुछ भी ख़बर नहीं लिया करते थे, इस कारण अभी तक अजित भूख से बहुत व्याकुल था। भात खा कर वह उस आठ फ़ीट लम्बी और छः फ़ीट चौड़ी कोठरी में धीरे-धीरे टहलने लगा। अन्दर सख़्त गर्मी थी। हवा आने का रास्ता भी सिर्फ़ वह दक्षिण-दिशा का ज़रा-सा झरोखा ही था। कोठरी के अन्दर सील के कारण बदबू भर रही थी। अन्धकार में मच्छरों की असंख्य सेना मानों प्रयाण का बैंड बजा रही थी। मगर इस समय मोहिनी से बातचीत करके अजित अपनी सब तकलीफ़ें भूल-सा गया था। थोड़ी देर तक इसी तरह टहलते रहने के बाद वह चादर ओढ़ कर चटाई पर सो गया। दो रातों का जगा था, इस से खूब गहरी नींद लगी।

प्रातःकाल पास की कोठरी से खूब चिल्ला-चिल्ला कर रोने की आवाज़ सुन कर अजित हड़बड़ा कर जाग पड़ा। अजित एकदम कूद कर खड़ा हो गया। वह समझ गया कि कोठरियों का जमादार पास की कोठरी वाले जुलाहे पर बेंत जड़ रहा है। अजित घबरा गया। उसे संदेह होने लगा कि कहीं रात को मोहिनी के यहां आने का समाचार किसी को मालूम तो नहीं हो गया। इसी समय अजित का ध्यान कोठरी के कोने में पड़े मोहिनी द्वारा लाए गए ढाक के उस पत्ते पर पड़ा। उसे भय हुआ कि कहीं इसी पत्ते के कारण मेरी जान आफ़त में न पड़ जाय। यह विचार आते ही उस ने उस पत्ते को उठा लिया और जल्दी-जल्दी चबा कर खा गया।

थोड़ी देर में अजित की कोठरी का दरवाज़ा भी खोला गया। जमादारों के साथ आज एक फिरंगी भी था। उस के हाथ में चमड़े का एक ज़बरदस्त कोड़ा था। अजित कोठरी से बाहर लाया गया। उस ने देखा कि पास की कोठरी का जुलाहा कोड़ों की मार से अधमरा-सा हो कर कराह रहा है। फिरंगी ने देखा कि अजित की उम्र अभी थोड़ी है। इस कारण उस ने उसे दो-एक चपतें लगा कर ही छोड़ दिया। अजित को ताकीद कर दी गई कि भविष्य में यदि कभी वह अपना काम पूरा न करेगा, तो यह उस के लिए ठीक न होगा। इस धमकी के साथ उसे घर चले जाने की आज्ञा मिल गई।

वर्क-शाप की उत्पत्ति—

मिदनापुर ज़िले में कम्पनी का जो एजैण्ट उन दिनों काम कर रहा था, उस का नाम था मि० फ़ॉक्स। यह आदमी सचमुच लोमड़ी-जैसा मक्कार और भेड़िए-जैसा क्रूर था। फ़ॉक्स ने मिदनापुर के जुलाहों से काम लेने का एक और नृशंसतम उपाय सोच निकाला। उस ने प्रत्येक गांव में एक-एक 'वर्कशाप' बनवाया। पहले जुलाहों को कुछ पेशगी देकर महीने-भर का काम उनके सिपुर्द कर दिया जाता था। यह काम पूरा न करने वालों को कोठरी की सज़ा दी जाती थी। अब फ़ॉक्स ने यह नियम बना दिया कि प्रत्येक जुलाहा नियमित रूप से इसी वर्क-शाप में काम किया करे। उन्हें अपने घर में काम करने की आज्ञा

नहीं थी। जुलाहों से इन कारख़ानों में बारह घण्टे काम लिया जाता था। दोपहर को भोजन के लिए सिर्फ़ एक घण्टे का अवकाश मिलता था। इसी एक घण्टे में अनेक जुलाहे भोजन पकाते भी थे, और खाते भी थे। केवल थोड़े-से त्योहारों को छोड़ कर ये कारख़ाने कभी बन्द नहीं होते थे। जुलाहों से इतनी मेहनत करवा कर भी उन्हें प्रतिदिन केवल तीन पैसे से लेकर चार आने तक मज़दूरी दी जाती थी।

अभागे अजित को भी कम्पनी के इस नए प्रबन्ध का शिकार होना पड़ा। उस की माता के घर में जो खड्डी लगी थी, उसे तोड़-फोड़ डाला गया। कपड़ा बनाने के लिए अजित के घर में जो और सामान था, उसे नाम-मात्र के दाम पर 'खरीद' लिया गया।

ज़िले भर के जुलाहे इन अत्याचारों से इतना तंग आ गए कि वे अपने बाप-दादा का घर छोड़ पूर्व की तरफ के जंगलों में जाकर बसने लगे। किसी-किसी ने कम्पनी के फौलादी पंजे से बचने के लिए अपने अँगूठे ही काट लिए। समाज में अशांति फैल गई। दुष्काल और बीमारी बढ़ने लगी। मगर इन बातों की परवाह करने वाला उन दिनों देश में कोई नहीं था।

अजित प्रातःकाल वर्क-शाप में चला जाता। मां जो थोड़ा-सा भात बना कर दे देती, उसी से वह अपना पेट भरता। रात को अँधेरा हो जाने के बाद वह घर लौटता। इस किशोरावस्था में ही उस का विकास रुक-सा गया। उस की सम्पूर्ण चंचलता

और प्रसन्नता गायब हो गई। महीमपुर गांव के किनारे वह सुन्दर-सी नदी अभी तक ठीक उसी तरह अठखेलियां करती हुई बहती थीं, परन्तु अब अजित को कभी उस ओर जाने की फुर्सत ही न मिलती थी।

मोहिनी अब अबोध बालिका नहीं रही। अब उस की आयु चौदह वर्ष की है। इतनी उम्र होजाने पर भी उस का विवाह अभी तक क्यों नहीं हुआ, यह बात महीमपुर-निवासियों के लिए विस्मय और चर्चा की वस्तु है। मोहिनी के मां-बाप जुलाहे नहीं थे। वे किसान थे। वे गांव के काफ़ी सम्पन्न और प्रभाव-शाली व्यक्तियों में गिने जाते थे।

मोहिनी का विवाह अभी तक क्यों नहीं हुआ, इसे कोई नहीं जानता। शायद वह स्वयं भी नहीं जानती। परन्तु अब चौदह वर्ष की बालिका बन कर वह इतना अवश्य समझ गई है कि अब तो बाध्य होकर उसे अपने जीवन की दिशा बदलनी ही होगी। अब वह शरारती बच्चों की तरह चाहे जब गाँव के बाज़ार में नहीं घूम सकेगी। किसी त्यौहार के दिन वह बहुत नज़दीक जाकर कौतूहलपूर्ण नेत्रों से पंडितों या पुरोहितों की याज्ञिक-क्रियाएँ नहीं देख सकेगी। समय के थपेड़ों ने उसके जीवन का रुख बदल दिया है, मगर एक बात अभी तक उसी तरह कायम है। मोहिनी अभी तक सांझ के समय घर की गायों को पानी पिलाने के लिये उसी तरह स्वयं ही नदीतट पर ले जाती है, जिस तरह पहले ले जाया करती थी। नदी से लौटते समय मोहिनी की चाल

बहुत धीमी हो जाती है। पानी पीकर गउएँ अपने बछड़ों से मिलने की अधीरता में भाग-भाग कर चलती हैं, मगर मोहिनी को उनकी यह शीघ्रता पसन्द नहीं। वह उनके गले की रस्सियां थामकर उन्हें धीमे चलने को लाचार करती है।

नदी से मोहिनी के घर की तरफ़ जो राह जाती है, उसमें एक मोड़ पर पूर्व-दिशा से एक और पगडंडी आकर मिलती है। मोहिनी इस पगडंडी के मुहाने पर दो-चार मिनट अवश्य सुस्ताती है। व्याकुल गायों की रस्सी को अपने हाथ में थामे हुए मोहिनी प्रायः प्रतिदिन थकावट से झुके हुए शरीर तथा पीले चेहरे वाले जुलाहों को इसी पगडंडी पर से गाँव की तरफ़ आते हुए देखती है। इनमें कभी-कभी दूर से, कारखाने से अकेला आता हुआ, अजित भी उसें दिखाई देजाता है। मोहिनी रोज़ देखती है कि अजित दिन-ब-दिन कमज़ोर होता चला जा रहा है। अजित मोहिनी के निकट आकर सदैव मुस्करा तो देता है, मगर मोहिनी की बड़ी-बड़ी आँखों में उसने कभी ग़ौर से नहीं देखा। यदि वह कभी उनमें ध्यान से झाँकता, तो उसे स्पष्ट-रूप से दिखाई दे जाता कि मोहिनी नदी-तट से पगडंडी के इस मुहाने तक निरंतर रोती हुई आई है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अजित को वर्क-शाप में कोड़ों की मार खानी पड़ती है। वर्क-शाप से लौटते हुए, वह कोड़ों की मार से पड़े पीठ पर के चिन्हों को अपनी पुरानी चादर से ढाँक कर, उन्हें मोहिनी की नज़र से छिपाने का निष्फल प्रयत्न करता

है। मोहिनी की अन्तर्भेदिनी दृष्टि से यह बात छिपी नहीं रहती।

यह बात नहीं कि अब उन दोनों का एक दूसरे के घर आना जाना बन्द हो गया हो। जब मौका मिलता है, वे दोनों एक दूसरे के घर अवश्य आते-जाते हैं। फिर भी मोहिनी को साँझ के अँधेरे में वर्कशाप से चुपचाप और धीरे-धीरे लौटते हुए अजित को देखना बहुत अधिक पसन्द है। वह यह भी जानती है कि अजित के लिए इससे बड़ा और कोई पुरस्कार या आश्वासन उसके पास—उसी के पास क्या, किसी के पास भी—नहीं है। दिन भर हड्डियां तोड़ कर मेहनत करने के बाद जब सांझ के समय मोहिनी पर अजित की नज़र पड़ती है तो उस की सम्पूर्ण थकावट स्वयं शान्त हो जाती है।

होली का त्यौहार—

होली का दिन था। कारखाने में आज भी सिर्फ़ आधे दिन की ही छुट्टी थी। वर्क-शाप आज मध्याह्न को एक बजे के बाद खुलना था। महीमपुर में आज भी होली मनाई गई। 'होली मनाना' तो परलोक के लिए भी आवश्यक है न; फिर भला हिन्दू लोग यह त्यौहार क्यों न मनाते। महीनों के बाद आज सबेरे ही से अजित नदीतट पर चला गया। वहां उस ने एक पीपे में कीचड़ वाला पानी भर कर उस में गहरा लाल रंग मिला दिया। उस की रगों में मुद्दत से शरारत की जो भावना दबी पड़ी थी,

वह जाग्रत् हो उठी। नदीतट पर आने-जाने वाले चरवाहे, गाँव के राहगीर और घाट पर स्नान की इच्छा से जानेवाली स्त्रियाँ—कोई भी इस उपद्रवी नौजवान के की शरारतों बच न सका। उस ने सभी पर होली का वह रंगीन प्रसाद उछाला, मानों आज होली का सारा राग-रंग अजित में ही सीमित हो गया था। इस समय वह स्वयं भी इसी रंग-मिले कीचड़ से पुता हुआ था। यहां तक कि उसे पहिचानना भी कठिन हो रहा था।

दस बजे के लगभग मोहिनी अजित के घर गई। वहां अजित की बुढ़िया माता से उसे मालूम हुआ कि अजित सुबह से नदी की तरफ़ गया हुआ है। मोहिनी भी उसी तरफ़ चल दी। कुछ दूर जाकर, गली के एक मोड़ पर उस ने जो नज़ारा देखा, उसे देख कर आज बहुत दिनों के बाद उस के मुँह पर स्वाभाविक मुसकान की एक सुन्दर रेखा दौड़ गई। उस ने देखा कि अजित होली का मूर्तिमान् अवतार बन कर उसी की ओर भागा आ रहा है। मोहिनी को एक कदम भी इधर-उधर हटने का अवसर न मिला और अजित ने एक कटोरा-भर कीचड़ उस पर उछाल दिया। अब मोहिनी की बारी थी। अजित ने अपना पीपा गली के ठीक बीच में रक्खा हुआ था। मोहिनी सीधे उसी तरफ़ बढ़ी और उस ने अजित का वह सारा गोला-बारूद गली में उलट दिया। अजित को शरारत में अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। दोनों अब एक साथ नदीतट की ओर गए। दोनों को आज बहुत दिनों के बाद अपना सुख-दुख एक दूसरे को सुनाने का अवसर

मिला था, इसी कारण नदीतट पर उगी हुई दूर्वा पर दोनों बहुत देर तक बैठे रह कर एक दूसरे से बातचीत करते रहे।

इस के बाद जब अन्य आवश्यकताओं से निवृत्त हो कर अजित अपने कारखाने में पहुँचा, तब दोपहर ढल चुकी थी। तीन बज रहे होंगे। अजित अत्यधिक घबराहट की दशा में अपनी खड्डी के निकट जा खड़ा हुआ। दुर्भाग्य से महीमपुर के वर्क-शाप में आज स्वयं मि० फॉक्स निरिक्षणार्थ आए हुए थे। अजित को यह बात मालूम नहीं थी। वह करघा ठीक कर के अपना काम करने लगा। इसी समय एक जमादार ने आ कर अजित से ताने में पूछा—"आज इतनी सुबह कैसे आ पहुँचे !"

अजित ने कोई जवाब न दिया।

जमादार एकदम अक्खड़ था। उसने नज़दीक आकर अजित का कान पकड़ लिया और कहा—"जवाब क्यों नहीं देते ?"

परन्तु अजित के आज प्रातःकाल के और इस समय के जीवन में जो यह तीव्र विषमता आ गई थी, उसने अजित को इस बेमौके भी दबने न दिया। जमादार का हाथ बलपूर्वक दूर हटाकर उसने जवाब दिया—"इस धौंस का क्या मतलब है ?... देर से आया हूँ तो तनख़्वाह काट लो !"

जमादार के लिए अजित का यह साहस कल्पनातीत था। वह बदमाश झूठमूठ चिल्ला उठा—"अरे इस लड़के ने मेरा हाथ तोड़ दिया। हाय ! हाय !"

यह चिल्ल-पों सुनते ही सभी जमादार अजित पर कोड़े ले कर टूट पड़े। अभागा अजित घबरा गया। एक साथ इतने महारथियों की मार वह कहां तक सँभालता। लाचार हो कर उस ने कोड़ों का प्रहार अपने हाथों पर रोकना शुरू किया। यह शोरगुल सुन कर मि० फाक्स भी उसी स्थान पर आ गए थे। अजित जिस ढंग से अपने को मार से बचाने का प्रयत्न कर रहा था, वह ढंग उन्हें अक्षन्तव्य गुस्ताख़ी से भरा हुआ जान पड़ा। इसलिए उन्हों ने बीच-बचाव न किया। परिणाम यह हुआ कि जमादारों की मार उस अभागे लड़के पर तब तक निरन्तर पड़ती रही, जब तक वह लहू-लुहान होकर जमीन पर नहीं गिर पड़ा।

मोहिनी आज बड़ी खुश थी। दोपहर के बाद वह घर से बाहर नहीं निकली। साँझ को वह नदीतट पर भी नहीं गई। घर पर रह कर ही उस ने बड़े प्रयत्न से रसगुल्ले तैयार किए। होली के उपलक्ष्य में एक कटोरा-भर रसगुल्ले लेकर वह सूर्यास्त के बाद अजित के घर गई। वहां पहुँच कर उसने देखा कि अजित की बुढ़िया माता दरवाज़े की चौखटे पर बहुत ही निराश भाव से बैठी है। वह बहुत अधिक घबराई हुई थी। आज उसका अजित कारखाने में देर करके गया था, इसलिए उस का दिल दोपहर ही से घबरा रहा था। अब रात हो जाने पर भी अजित को घर आया न देख कर वह दरवाज़े की चौखट पर आ बैठी थी। यहां के उलटे रंग देख कर मोहिनी ने रसगुल्लों का कटोरा अपने आंचल की ओट में कर लिया और नज़दीक आ कर पूछा—

"मा ! अज्जी कहां है ?"

बुढ़िया ने जिस निराशभाव से हाथ हिलाकर 'पता नहीं' का इशारा किया, उसे देखकर मोहिनी को उससे कोई और बात करने की हिम्मत न हुई। वह उससे रसगुल्लों की बात तक न कह सकी। कटोरा उसी तरह से छिपाए हुए वह धीरे-धीरे वहां से लौट पड़ी।

मोहिनी अजित के घर से तो लौटी, मगर अपने घर की तरफ़ नहीं गई। वह गई वर्क़-शाप की तरफ़। चतुर्दशी का चांद स्वच्छ आकाश से निर्मल सुधा बरसा रहा था। धूल से भरी वह पगडंडी जैसे चांदनी से ढकी-सी पड़ी थी। दूर तक सभी कुछ साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा था। शीघ्रता से उस पगडण्डी पर चलते-चलते मोहिनी को दूर पर दिखाई दिया कि रास्ते के बीचों-बीच जैसे कोई भारी-सी चीज़ पड़ी हुई है। थोड़ी दूर और आगे चलकर उसे कहराने की आवाज़ भी स्पष्ट रूप से सुनाई देने लगी। मोहिनी का हृदय धक्-धक् करने लगा। निकट आकर उसने पहिचाना कि जो व्यक्ति आज दोपहर तक सारे गांव में होली का मूर्तिमान अवतार बन कर हर्ष और जीवन का संचार कर रहा था, वह इस समय इस धूलभरी पगडंडी पर मृतप्राय की-सी दशा में पड़ा है ! भय, शोक और आश्चर्य के मारे मोहिनी के आँसू तक भी न निकल सके। रसगुल्लों के कटोरे को उस ने वहीं, पगडंडी पर ही, फेंक दिया। इस के बाद ?.........इस के बाद —बस इतना ही कि अपने दुर्बल शरीर का आसरा देकर वह घायल अजित को धीरे-

धीरे उसकी बुढ़िया मां के पास ले गई।

अजित की बुढ़िया मां उस समय जिस करुण कातरता से रोई, वह रोना ही फिरंगियों की बढ़ती हुई उस भारी सल्तनत के प्रति एक बहुत बड़ा अभिशाप था। उसका रोना सुन कर गाँव के बीसियों आदमी जमा हो गए। मोहिनी के मां-बाप भी वहाँ आ गए। अजित का उपचार प्रारम्भ हुआ।

महीमपुर गाँव में रहने वाले, नवाब मुर्शिदअलीख़ाँ के कारिन्दे ने इस घटना को बहुत बुरा तो मनाया, परन्तु यह बात वह फिरंगियों के किसी अदने-से चपरासी तक से कहने की हिम्मत भी नहीं कर सका। देश का शासन उन दिनों ऐसे ही नामर्द लोगों के हाथों में था।

अजित इस बार मरने से बच गया। पूरे एक मास बाद जाकर उसके घाव भर पाए। अगर कभी मनुष्य मौत से लड़ कर अपने किसी प्रियजन को बचा सकता है, तो यह निस्संकोच होकर कहा जा सकता है कि मोहिनी ने मौत से लड़कर अजित को बचा लिया।

विदाई—

होली के ठीक एक मास बाद की बात है। अजित अब बिल्कुल स्वस्थ हो चुका था। उसकी बुढ़िया माता ने आज इसी प्रसन्नता में मोहिनी और अजित की दावत करने का निश्चय किया। प्रातःकाल खूब अंधेरे में ही उठ कर वह घर के कामकाज में लग

गईं। बड़े चाव से उसने नाना प्रकार के व्यंजन और मिठाइयां तैयार कीं। मोहिनी अब प्रतिदिन नित्यकर्मों से निबट कर वहां आठ बजे के करीब पहुँचा करती थी। बुढ़िया ने पहले दिन उसे दावत के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं दी थी। आज, वह चाहती थी कि सब सामान मोहिनी के आने से पहले ही तयार कर लिया जाय और इस तरह मोहिनी को आश्चर्य-चकित किया जाय। खाने-पीने का सब सामान तैयार हो गया। मगर जिस के लिए यह सब तैयारी हो रही थी, वह नहीं आई। अठ बज गए, मोहिनी नहीं आई। बुढ़िया की उद्विग्नता बढ़ने, लगी। क्रमशः नौ बज गए, दस बज गए। मगर मोहिनी नहीं आई। अब अजित भी चिन्तित होने लगा। माँ से आज्ञा लेकर अजित मोहनी की खोज में उसके घर की तरफ़ जाने ही वाला था कि वह वहां आपहुँची। अजित का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उसने मुसकरा कर कहा—"तुम्हारी इन्तज़ार करते-करते माँ की आंखें थक गईं। तुम कहीं कैद हो गई थीं क्या?"

मोहिनी का चेहरा आज बहुत गम्भीर था। उसकी आंखों से प्रतीत होता था कि जैसे वह अभी-अभी रोकर आरही है। फिर भी उसने जबरदस्ती मुसकरा कर जवाब दिया—"नहीं, इस देरी की कोई खास वजह नहीं है!"

इसी समय दूर ही से बुढ़िया ने मोहिनी पर एक साथ बहुत से आशीर्वादों की वर्षा-सी करते हुए आवाज़ दी—"आओ मोहिनी! अजित बड़ी देर से तुम्हारी इन्तज़ार कर रहा है।

आज तुम दोनों को मैं एक साथ अपने हाथ से भोजन कराऊँगी।"

मोहिनी ने हाथ जोड़ कर माँ को प्रणाम किया।

अजित से मोहिनी की आज की गम्भीरता छिपी न रह सकी। माँ दूसरे कमरे में थी। अजित मोहनी के निकट आया और उसका हाथ पकड़ कर बड़े कोमल-स्वर में उसने पूछा—"क्यों, बात क्या है मोहिनी!"

मोहिनी ने कहा—"कुछ भी तो नहीं!" इसके बाद ज़बर-दस्ती मुसकराने का प्रयत्न करते हुए उसने कहा—"चलो माँ के पास चलें।"

अजित ने मोहिनी का हाथ छोड़ दिया। वह भी अब बिल्कुल गम्भीर बन गया। यह देख कर मोहिनी खिलखिला कर हँस पड़ी। उसने कहा—"तुम भी अजीब आदमी हो! इस तरह भी कोई रूठता है?"

अजित ने कोई जवाब नहीं दिया। दोनों जने माँ के पास चले गए। वहां पहुँच कर मोहिनी आज की दावत के लिए बड़ा उत्साह दिखाने लगी।

अजित को मोहिनी के आज के प्रत्येक आचरण में कोई विशेषता नज़र आरही थी। परन्तु इस का कारण वह अभी तक समझ नहीं सका था।

थोड़ी ही देर बाद मोहिनी ने अजित की माँ से, ऐसी स्वर में जैसे वह कोई बिलकुल मामूली बात कह रही हो, कहा—"माँ, अब तुम्हें महीमपुर गांव छोड़ देना पड़ेगा, और वह भी आज ही।"

माँ, बेटा दोनों चौंक पड़े। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—"वह क्यों ?"

"अब इस गांव में तुम्हारा निर्वाह न हो सकेगा।"

बुढ़िया ने पूछा—"क्यों ?"

"इस गांव के जुलाहों पर भगवान का प्रकोप है। मैंने सुना है कि जो जुलाहा यहां बच रहेगा, उसका सर्वनाश होजायगा।"

"किस से सुना है ?"

"सभी तो कहते हैं! तभी तो, जिस जुलाहे का बस चलता है, वह पूरब की ओर, गोलपाड़ा ज़िले में, भाग जाता है। लोग कहते हैं कि ये फिरंगी जुलाहों को इस देश से मिटा देना चाहते हैं।"

बुढ़िया ने ये सब बातें पहले भी सुन रक्खी थीं। वह मन ही मन यह सोचती थी कि अजित के भले के लिए, उसके अच्छा होते ही वह उसे लेकर पूरब के जंगलों की ओर भाग जाय। परन्तु उसे विश्वास था कि अजित और उससे भी बढ़ कर मोहिनी को इस बात से बड़ा दुख होगा। परन्तु अब स्वयं मोहिनी को यह बात कहते देख कर उसने अजित से कहा—"सुनते हो, मोहिनी क्या कह रही है!"

अजित ने कोई जवाब नहीं दिया। इसी समय बुढ़िया को सन्देह हुआ कि उसकी गाय का बछड़ा रस्सी तुड़वा कर आंगन की बेलें चर रहा है; वह वहां से उठ कर उधर ही चली गई।

जब मोहिनी और अजित दोनों वहां अकेले रह गए तो

अजित ने अपनी गीली आंखों को मोहिनी के मुँह पर गड़ा कर बड़ी गम्भीरता से कहा—"ओह, तुम इतनी निष्ठुर हो!"

मोहिनी के शरीर-भर में बिजली-सी घूम गई। उसकी आंखों में बलात् पानी उतरने लगा। मगर इस सब को बड़े यत्न से वश में करके उसने, ऐसे स्वर में जैसे वह हुक्म देरही हो, कहा—"अजित, तुम्हें पूरब में तो जाना ही पड़ेगा!" यह कहते हुए उसके हृदय में विभिन्न भावों की परस्पर जो मारकाट हो रही थी, उस का खून शीघ्र ही उसके चेहरे पर झलकने लगा। उस का चेहरा बहुत अधिक लाल होगया।

अजित ने फिर से कहा—"निष्ठुर!"

मोहिनी की आंखों में आंसू उतर आए और उसी क्षण बड़े बड़े मोतियों के समान दो स्वच्छ अश्रुबिन्दु उसके सुन्दरतम, विकसित और लाल-होरहे गालों को भिगोते हुए नीचे की तरफ़ लुढ़क गए।

इसी समय अजित की माता के वापिस लौटने की आवाज़ सुनाई दी। मोहिनी ने शीघ्रता से अपनी आंखें पोंछ डाली और मुसकरा कर कहा—"माँ! बड़ी भूख लग रही है। अब कितनी देर तक और तरसाओगी?"

बुढ़िया प्रसन्नता से गदगद होगई। वह मोहिनी के लिए बहुत-सी मंगल-कामनाएं करते हुए थाल परोसने लगी।

भोजन शुरू हुआ। अजित कुछ नहीं खाना चाहता था, मगर मोहिनी की ज़िद, उस की स्नेहमयी प्रेरणाओं और स्वेच्छाचारी

आज्ञाओं से बाधित होकर उसे खाना ही पड़ रहा था।

भोजन के बाद मोहिनी और अजित को पुनः एकान्त मिला। यह मालूम नहीं कि घण्टों तक उन दोनों में क्या बातचीत होती रही; परन्तु इतना ज़रूर मालूम है कि दोनों के चेहरों पर आंसू, मुसकराहट और गम्भीरता के अनेक पटाक्षेपों के बाद अजित महीमपुर छोड़ कर पूरब के जँगलों में जाकर रहने के लिए तैयार होगया।

क्रमशः रात होगई। आज वैशाख-शुक्ला की चतुर्दशी थी। आसमान में पूरा चांद दिखाई दे रहा था, मगर आज उसकी सुधा उतनी स्वच्छ नहीं थी। आकाश में गरमी के कारण कुछ धुंध-सी छाई हुई थी। इसी समय दो गठरियां उठा कर अजित अपनी मा के साथ चुपचाप नदीतट की तरफ़ बढ़ा जारहा था। मोहिनी भी उसके साथ थी। पकड़े जाने के भय से अजित ने अपना भेस किसानों-का-सा बना रक्खा था।

ये तीनों जने गांव की सीमा पार कर के नदीतट पर आ-पहुँचे। हवा बन्द थी। जंगल में सन्नाटा था। नदी का पानी बिलकुल उतरा हुआ था, इसलिए वहां भी ध्वनि नहीं थी। अजित और मोहिनी भी बिलकुल चुपचाप चले जारहे थे। सब ओर पूर्ण शान्ति थी। मगर नदी का यह नीरव-तट अजित और मोहिनी के हृदयों में, मानों चिल्ला-चिल्ला कर पुरानी स्मृतियों की जो कहानी कह रहा था, उस ने उन दोनों के हृदयों में कोलाहल का भरी तूफ़ान-सा खड़ा कर दिया था। क्रमशः वह क्षण भी

एक आया, जब वे दोनों के दूसरे से विदा हो गए।

—मोहिनी घर की ओर लौट पड़ी और अजित अपनी मा का हाथ पकड़ कर धीरे-धीरे नदी का उथला जल पार करने लगा।

दस वर्ष बाद—

ब्रह्मपुत्रा-नदी के किनारे जो घने जंगल दूर तक छाए हुए हैं, उनमें एक शिकारी रहता है। इस समय तक सम्पूर्ण बंगाल में अंगरेज़ों का अखंड राज्य कायम होचुका है, मगर इन जंगलों में उसी शिकारी का एकाधिपत्य है। इस शिकारी का मनुष्य-जाति से कोई सम्बन्ध नहीं। इसकी प्रजा पशु हैं—हिंसक और शाकाहारी दोनों। बंगाल-भर के छोटे-मोटे शिकारी इस 'ब्रह्मपुत्रा के शिकारी' को अपना देवता मानते हैं, यद्यपि उनमें से कभी किसी ने उसे देखा तक भी नहीं। यह शिकारी एक लंबा-चौड़ा जवान है। बिलकुल अकेला रहता है। कपड़े नहीं पहिनता। सिर्फ़ एक बड़े बब्बर शेर की खाल को अपनी कमर के चारों ओर लपेटे रहता है। कोई नहीं जानता कि उसका जन्म कहाँ हुआ था। बंगाल-भर में उसके सम्बन्ध की अनेक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। लोगों में मशहूर है कि वह शेर पर सवारी करता है, जंगली हाथी अपनी सूँडों से उसका तिलक करते हैं और वन के पक्षी इधर-उधर से फल बटोर कर उसके लिए भोजन ला देते हैं।

उसके सम्बन्ध में जो किंवदन्तियां सुनी जाती हैं, मालूम नहीं उसमें से कितनी ग़लत या कितनी सही हैं। परन्तु एक

बात बिलकुल ठीक है, वह यह कि वह शिकारी फिरंगियों का दुश्मन है। उस के सिर पर सदैव एक ताज रहता है। यह ताज मनुष्य की हड्डियों से बना होने पर भी बहुत सुन्दर है।

बरसात का मौसम अभी शुरू ही हुआ था। संध्या का समय था। ब्रह्मपुत्रा-नदी पूरे वेग से बह रही थी। नदी के किनारे, एक ऊँचे टीले पर वह शिकारी चुपचाप खड़ा था। टीले पर नरम-नरम दूर्वा उगी हुई थी। आसपास के वृक्षों पर पक्षी चहचहा रहे थे। जंगल में जानवर चिल्ला रहे थे। वह शिकारी बन्दूक के मुँह पर अपनी हथेली टेक कर, एकटक दृष्टि से, नदी में उठने वाली बड़ी-बड़ी लहरों की तरफ़ देख रहा था।

सहसा उसे दूर पर किसी कुत्ते के भौंकने की आवाज़ सुनाई दी। वह चौंक कर सतर्क हो गया। कुत्तों का भौंकना अभी तक जारी था। शिकारी समझ गया कि आज फिर किसी मज़ेदार घटना की सम्भावना है। वह बन्दूक हाथ में सम्हाल कर शीघ्रता से उसी ओर चल दिया। थोड़ी दूर जाकर शिकारी कुत्तों की 'भौं, भौं' ध्वनि के साथ किसी स्त्री के रोने की आवाज़ भी उस के कानों में पड़ी। शिकारी न-जाने क्यों बिलकुल अधीर हो उठा। उसमें असाधारण स्फूर्ति आगई।

कुछ देर में उसे दिखाई दिया कि जंगल के एक भाग को साफ़ कर के दो-तीन बड़े-बड़े तम्बू डाले गए हैं। इन तम्बुओं के सामने एक फिरंगी धीरे-धीरे टहल रहा है। उस के पीछे, तम्बुओं के दरवाज़ों पर, कई खानसामे पांच-छः शिकारी कुत्तों को सम्हाले

हुए खड़े हैं। शिकारी बहुत अधिक सतर्कता से आगे बढ़ा। उसे दिखाई दिया कि उस फिरंगी की ओट में एक भारतीय महिला बँधी हुई पड़ी है। एक क्षण तक वृक्षों की ओट से उस महिला की ओर देखते रह कर शिकारी सहसा उछल पड़ा। न-जाने इतना अधिक अधीर वह कैसे बन गया। बिजली की गति से वह उस स्थान पर जा पहुँचा। बन्दूक की तीन-चार गोलियां चला कर शिकारी ने उस फिरंगी को वहीं पर ठंडा कर दिया। इस के बाद उस महिला के निकट पहुँच कर वह बड़ी व्यग्र आवाज़ में चिल्लाया—"मोहिनी!"

शायद वर्षों के बाद वह शिकारी आज पहली वार किसी मनुष्य से बोला था।

बंदिनी गोलियों की आवाज़ सुनकर और भी अधिक डर गई थी। अब अचानक अपना नाम सुनते ही वह चौंक उठी। अगले ही क्षण शिकारी को उसने जैसे पहिचान लिया। वह अत्यधिक उल्लासभरे स्वर में पुकार उठी—"अज्जी!"

शिकारी ने उस बंदिनी महिला को अपनी बलिष्ट भुजाओं में उठा लिया और तुरन्त ही वायुवेग से वह जंगल में प्रविष्ट हो गया।

—यह सब काण्ड सिर्फ़ एक ही मिनट में हो गया!

अचानक यह गड़बड़झाला देखकर कैम्प के नौकरों में भगदड़ पड़ गई थी। उन्होंने और कोई उपाय न देखकर अपने कुत्तों को इस शिकारी पर छोड़ दिया। दो-एक ने उस पर गोलियों का

फ़ायर भी किया। परन्तु उस शिकारी को न तो कोई गोली ही लगी और न शिकारी कुत्ते ही पकड़ सके।

इसके बाद किसी को नहीं मालूम कि अजित और मोहिनी कहां जाकर रहने लगे।

× × × ×

दो-चार दिनों के बाद कलकत्ते के सरकारी रजिस्टरों में यह दर्ज किया गया—"गोलपाड़ा के कलैक्टर मि० फ़ॉक्स ब्रह्मपुत्रा के उस असभ्य शिकारी के हाथों से एक भारतीय महिला को छुड़ाने गए थे, परन्तु वहां धोखे से मार डाले गए। मि० फ़ॉक्स कम्पनी के असाधारण हितचिन्तक थे। पिछले बरसों में मिदनापुर ज़िले में कम्पनी की आय बढ़ा देने का श्रेय भी इन्हीं को था।"

इन सरकारी रजिस्टरों में जो कुछ चाहे लिखा रहे, परन्तु गोलपाड़ा के निवासी जानते थे कि करीब नौ बरस पहले, पश्चिम की तरफ़ से आकर गोलपाड़ा के गांव-गांव में तपस्विनी-सी बन कर घूमने वाली सुंदरी मोहिनी को फिरंगी साहब के नौकर किस उद्देश्य से पकड़ ले गए थे।

शराबी

"बनवारी ! ओ बनवारी !"

"आया हज़ूर !" कहकर बनवारी बाबू दुर्गाचरण की बैठक में दाखिल हुआ। बाबू साहब ने कहा—"जाओ, बाज़ार में जाकर लैमन की पांच बोतलें और दो सेर बर्फ ले आओ।"

दोपहर का समय था। सूरज आग बरसा रहा था। सनसनाती हुई लू चल रही थी। बनवारी अब जवान नहीं रहा था—वह ४५ की उम्र पार कर चुका था। जिन दिनों वह जवान था, उन दिनों ऐसी गरम दोपहरी में नंगे पैरों बाज़ार जाना उसके लिए बिलकुल मामूली बात थी। परन्तु अब उसमें जवानी का वह जोश बाकी

नहीं रहा था। तो भी बनवारी ने अपने फटे जूते पहने और बाबू साहिब का एक तौलिया हाथ में लेकर वह बाज़ार की ओर चल दिया।

बाबू दुर्गाचरण के मकान से जो गली बाज़ार को जाती थी, उसके अन्तिम भाग पर बरगद का एक बड़ा वृक्ष था। यह बरगद सदियों का बूढ़ा था, उस की जड़ें किसी पुराने वंश की संततियों के समान दूर-दूर तक फैली हुई थीं। यह बरगद का पेड़ एक अच्छे-खासे मैदान पर छाया हुआ था। बनवारी जब इस पेड़ के नीचे पहुँचा, तब उस ने देखा कि एक जवान आदमी बेहोश-सा होकर मिट्टी पर ही सोया हुआ है। उसके सिर के लम्बे बाल अस्त-व्यस्त होकर बिखरे पड़े हैं। उसकी दाढ़ी मूंछों के कठोर नोकीले बालों पर धूल जम रही है। नौजवान के मुँह से लार टपक-टपक-कर बरगद के नीचे बालकों के खेल के कारण खूब महीन-होगई मिट्टी को सींच रही है। उस के शरीर पर मक्खियां भिन-भिना रही हैं।

पास ही, बरगद के तने के बिलकुल निकट, कुछ बालक खेल रहे थे। बनवारी ने उन से पूछा—"यह कौन है ?"

एक छोटे बालक ने ताली बजा कर कहा—"शराबी !"

बनवारी उस नौजवान के पास आकर बैठ गया। नौजवान के पसीने से सख्त दुर्गन्ध आरही थी,–फिर भी उसे सहन करते हुए बनवारी ने उस व्यक्ति को हिला कर जगाया। बड़ी कठिनता से वह जागा। मालूम होता है, शराब का नशा उतर चुका था।

उसकी लाल-लाल परन्तु आभा-शून्य आखों में अत्यधिक थकावट के चिन्ह दिखाई दे रहे थे।

उस ने बनवारी की ओर घूर कर देखा। इसी समय बनवारी ने पूछा—"यहां क्यों लेटे हो?"

उस व्यक्ति को मानों यह प्रश्न बिलकुल असंगत जान पड़ा। उस ने कहा—"क्यों का क्या मतलब!"

बनवारी ने उसे 'क्यों' का मतलब समझाना व्यर्थ समझा और उसका हाथ पकड़ कर कहा—"चलो, मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें मिठाई खिलाऊँगा।"

वह नौजवान खाने-पीने का नाम सुन कर खुश होगया। बनवारी के साथ चलने के लिए बड़ी आतुरता दिखाता हुआ वह बोला—"चलो, चलो, मुझे बहुत प्यास लगी है। मेहरबानी करके क्या मुझे एक बोतल पिला सकोगे!"

बनवारी ने नौजवान की बात का जवाब न देते हुए उससे पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

वह नौजवान बनवारी का यह प्रश्न सुन कर जैसे चौंक उठा। अपनी चाल को एकदम धीमा कर के वह बोला—"मेरा नाम तुमने बहुत वार सुना होगा।"

बनवारी ने उसे डांट कर कहा—"अपना नाम बताते हो या नहीं।"

उस नौजवान ने कहा—"मेरा नाम सुन कर तुम डर जाओगे।"

बनवारी ने समझा कि शायद अभी तक इस आदमी का नशा पूरी तरह उतरा नहीं है। इसलिए वह चुप होरहा।

बनवारी को उसके मालिक ने यह इज़ाज़त दे रक्खी थी कि गैस-वाले पानी की दूकान पर जा कर वह भी कभी-कभी एक बोतल पी लिया करे। आज बनवारी ने अपना हिस्सा इस शराबी को पिला दिया। शराबी गिड़गिड़ाया—"मयखाने की तरफ़ ले चलो!"

बनवारी ने कहा—"चलो तुम्हें वहीं ले चलूँ।"—यह कह कर बनवारी उस अभागे नौजवान को अपने घर ले आया। वहां दुर्गाबाबू बनवारी की प्रतीक्षा में बैठे थे। उन्हों ने नाराज़गी से कहा—"बनवारी, तुमने बहुत देर करदी!"

बनवारी ने कोई जवाब नहीं दिया।

× × × ×

कामकाज से निपट कर, रात के समय बनवारी ने अपने कमरे में जाकर देखा कि उसका शराबी मेहमान इस समय गिलहरी के समान फुर्तीला बना हुआ है। सिनेमा की फ़िल्म की तरह उस की आंखों की पुतलियां बड़ी तेज़ी से इधर-उधर घूम रही हैं। बनवारी यह देख कर भयभीत होगया। शराबी की यह दृष्टि उसे बड़ी भयङ्कर जान पड़ी। कोई बात चलाने की इच्छा से बनवारी ने पूछा—"हाँ, अब बतलाओ; तुम्हारा नाम क्या है?"

उस नौजवान ने मुट्ठी बांधकर बड़े रहस्यपूर्ण भाव से कहा—"धीरे बोलो, धीरे!"

अबके बनवारी को कुछ हँसी आगई। उसने कहा—"क्यों भाई, धीरे क्यों बोलूँ ?"

नौजवान नाराज़गी से बोला—"इतने बेवकूफ़ न होते तो नौकरी क्यों करते ! देखते नहीं, अगर हम लोग चाहें तो इस समय इस बाबू के यहां से गहरा हाथ मार सकते हैं। मैं ताला तोड़ने के फन में बड़ा उस्ताद हूँ। तुम सिर्फ़ यही बता दो कि इस गधे का खज़ाना रहता किस जगह है ?"

बनवारी फिर से चकरा गया। उसने धीरे-से कहा—"परमेश्वर से डरो भाई ! वह तुम्हें तुम्हारे इन्हीं पापों के लिए सज़ा दे रहा है।"

वह शराबी नौजवान इस तरह ठठा कर हँस पड़ा, जैसे उसने कोई बड़ी मूर्खता की बात सुन ली हो ! वह बोला—"अरे बेवकूफ़ ! परमेश्वर है ही कहां ?"

बनवारी यद्यपि पढ़ा लिखा नहीं था, परन्तु फिर भी वह बड़ा समझदार था, वह समझ गया कि यह बेचारा कोई बहुत अधिक सताया हुआ प्राणी है। इसी समय उस जवान ने पूछा—"अच्छा बनवारी ! तुम्हें इस बाबू के यहां काम करते कितना अरसा हुआ है ?"

बनवारी ने जवाब दिया—"४५ बरस।"

शराबी ने आश्चर्य से कहा—"४५ बरस ! इन बाबू लोगों का तो यह एक मोटा असूल है कि जिस तरह फलों को अधिक समय तक पड़ा रहने देने से, वे गल-सड़ जाते हैं, उसी तरह नौकर

भी पुराने होकर आलसी, गुस्ताख़, और आरामपसंद हो जाते हैं। तुम इतने दिनों तक एक ही जगह कैसे बने रहे ?"

बनवारी ने कहा—"बाबू जी के वालिद साहिब के यहां मेरे पिता नौकर थे। किस्मत से इन बाबू जी का और मेरा जन्म ठीक एक ही दिन हुआ था। मैं तो तभी से इनकी ख़िदमत में हूँ।"

वह शराबी अब के दार्शनिक बन गया। उसने कहा—"बाप रे बाप! लगातार ४५ बरसों तक तुम एक ही आदमी की सेवा-टहल करते रहे—फिर भी वह एहसान-फरामोश अभी तक तुम से अपना कमरा साफ़ करवाता है, उसी तरह बाज़ार से सौदा खरीदवाता है, इस पर भी तुम कहते हो कि न्याय करने वाला कोई परमेश्वर है !!!"

शराबी आगे बकने लगा—"मेरी भी कहानी सुनो। उसे सुनकर तुम्हें मालूम हो जायगा कि यदि कोई ईश्वर नाम भी चीज़ है भी, तो वह इन धनियों के यहां डाका डालने से ही प्रसन्न होती है। ये धनी लोग जोंक की तरह हमारा खून चूसकर ही तो धनी हुए हैं।"

बेचारा बनवारी बड़ी तकलीफ़ और अनिच्छा से ये बातें सुन रहा था। परन्तु शराबी इतने अधिक आवेश में था कि वह उसे रोक न सका। शराबी इस बात की परवाह किए बिना ही कि बनवारी उसके 'असत्य के प्रयोग' अर्थात् 'आत्मकथा' सुनना चाहता है या नहीं, बड़े मनोरंजक ढंग पर अपनी कहानी सुनाने लगा—

'मेरा नाम है बिहारी। मेरी उम्र इस समय २८ बरस की है। आज से सिर्फ़ तीन-चार बरस पहले मैं भी तुम्हारी ही तरह से खुदा और ईमान पर भरोसा रखने वाला था। उन दिनों मैं अहमदाबाद की एक बड़ी मिल में छः आना दैनिक लेकर काम किया करता था। मैं बचपन से अनाथ था, फिर भी किस्मत के ज़ोर से मेरा ब्याह हो ही गया। एक छोटी-सी फूंस की झोंपड़ी में मैं अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रहता था।

'इन दो बच्चों में एक लड़की थी—बहुत ही सुन्दर और अत्यधिक भोली! उसकी उम्र चार साल की होगी। एक बच्चा था—अधखिली कली से भी छोटा और पानी से भी अधिक मुलायम। वह अभी सिर्फ़ दो ही बरस का था।

'मैं दिन-भर कारखाने में मेहनत करता था। मुझ में उन दिनों ऐसी कोई बात नहीं थी, जिन्हें लोग ग़ल्ती और बेवक़ूफ़ी से 'ऐब' कहते हैं। मैं था तो गरीब ही, मगर उन दिनों मैं उसी में खुश था। दस घण्टे की मेहनत के बाद जब घर आकर मैं नमक की सहायता से रूखी रोटी चबाकर ठंडा पानी पीता, तब मेरी आत्मा झुक-झुक कर ईश्वर का शुक्रिया अदा किया करती थी। मैं इस ग़रीबी में ही सन्तुष्ट था। यदि मेरी जिन्दगी उसी तरह निकल जाती, तो भी एक बात थी। मगर तुम्हारे फ़रेबी खुदा से मेरी वह खुशी भी न सही गई।'

शराबी का स्वर अब धीमा और कोमल पड़ गया था। वह कहने लगा—"किस्मत के फेर से मेरी घर वाली को वह बीमारी

होगई, जिसका नाम तपेदिक है। मैं पहिले इस बीमारी के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था। समझता था कि शायद मामूली बुखार है, उतर जायगा। परन्तु कई महीनों बाद, उसे एक मामूली-से डाक्टर को दिखाने पर मालूम हुआ कि यह बीमारी ऐसी है जो किसी गरीब को एक बार होकर उसका साथ फिर कभी नहीं छोड़ती।

'मैं उन दिनों बिलकुल घबरा गया था। दिनभर मिल में मेहनत करना, उसके बाद घर आकर रोटी पकाना, बच्चों को खिलाना और रातभर अपनी औरत के सिरहाने बैठे रहना! धीरे-धीरे नौबत यहाँ तक आगई कि मुझे बहुत बार मिल से छुट्टी लेने को बाधित होना पड़ा। मिल के मैनेजर को यह बात मंज़ूर न थी कि कोई मज़दूर जिस दिन मर्ज़ी हो उस दिन काम पर आए और जिस दिन ज़रूरत हो—छुट्टी मनाए। फिर यह जान कर कि मेरी पत्नी को तपेदिक है, उसने मुझे मिल से निकाल देना ही उचित समझा। नतीजा यह हुआ कि मैं जो छः आना रोज़ कमा लाता था वह भी अब बन्द हो गया!

'धीरे-धीरे मैं घर का सब माल-असबाब बेचकर अपनी पत्नी का इलाज कराने लगा। इलाज क्या होता था—एक तीसरे दर्जे का मूर्ख-सा डाक्टर कभी-कभी आकर देख जाता था। वह बेवकूफ़ कहता था—"पहाड़ पर ले जाओ"; जैसे पहाड़ों पर अमीरों के सिवा किसी और का भी हक़ है! घर का सब सामान बिक जाने पर भी मेरी स्त्री अच्छी न हो सकी और एक दिन प्रातः-काल वह अपने दोनों बच्चों को मातृहीन करके वहाँ चली गई,

जहां जाने पर अमीरों की घुड़कियों से छुटकारा मिल जाता है।

× × ×

'मेरी झोंपड़ी में दरिद्रता अब नंगा नाच कर रही थी। अगले दिन जब मैं नींद से जगा तो देखा कि मेरे दोनों बच्चे एक टूटी चारपाई पर पड़े भूख के कारण सिसक रहे हैं। उनकी हालत का मैं ज़िक्र नहीं कर सकता। उनके फूल-ऐसे गाल हड्डियों से चिपक गए थे। घर में खाने को कुछ भी नहीं था। सोचा, चलो फिर कहीं काम की तलाश की जाय। उसी मिल में गया। मैनेजर उस वक़्त न मालूम किस वजह से नाराज़ बैठा था। शायद उसके हिसाब में कोई ऐसी ग़लती होगई थी, जो उसे सूझ नहीं रही थी। मुझे गिड़गिड़ाता देखकर उसने चपरासी से कहा—"निकालो इस बदज़ात को!"—दरबान के हाथों धक्के खाकर मैं रोता हुआ बाहर चला आया।

'दिनभर मैं अहमदाबाद के बाज़ारों में घूमा-फिरा; परन्तु कहीं कोई काम नहीं मिला। मेरी बदकिस्मती ने मेरी शकल-सूरत को इतना घिनौना बना दिया था कि मुझे जो कोई अपने दर्वाज़े पर खड़ा देखता, वही मुझे चोर या उचक्का समझ कर घुड़क देता था। मेरी आँखें कमज़ोरी और शोक से लाल हो रही थीं, गाल चिपक गए थे और कपड़े फट गए थे।

'साँझ को दिनभर का थका-मांदा मैं अपने घर वापिस आया। देखा, मेरे बच्चे उसी तरह खाट पर पड़े हैं। परन्तु चुप हैं। एक क्षण तक तो मुझे यह सन्तोष हुआ कि चलो, अभागे

नींद के कारण ही सही, थोड़ी देर के लिए भूख से छुटकारा तो पा गए। मगर फिर पास जाकर देखा तो वे बेहोश पड़े थे। इस दृश्य ने मुझे पागल बना दिया। मैं घर से फिर बाहर चला आया। मैं ने अब निश्चय कर लिया था कि जिस किसी तरह संभव होगा—चोरी से, धोखे से, फरेब से, या लूट से, मैं कोई खाने की चीज़ लाकर ही घर लौटूँगा।

'मगर उस दिन कुछ चुराने की नौबत नहीं आई। मेरी झोंपड़ी से थोड़ी ही दूर पर एक धनी व्यापारी का बंगला था। उसके छोटे लड़के के आज पहिली ही बार बाल काटे गए थे; इसी उपलक्ष्य में, उसने एक बड़ी दावत दे रक्खी थी। इस भोज की जूठन इस समय कुत्तों को फेंकी जारही थी। अपने मनुष्य होने के बल पर मैं ने उन कुत्तों को भगाकर इस जूठन के बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। इस में थे पूरियों के बहुत से टुकड़े, रायते और खीर का मिश्रण तथा मिठाइयों का चूरा, जो केले की फलियों के गूदे में एक तरह से गूँद दिया गया था। यह सब माल पाकर मुझे इतनी खुशी हुई, जितनी इन पूंजीपतियों को हज़ारों मज़दूरों का खून चूसने पर भी न होती होगी। घर जाकर, पानी के छींटे देकर, मैं अपने बच्चों को होश में लाया और उन्हें यह षट्रस जूठन खाने को दी।

'अगले दिन आजीवका का मुझे एक और उपाय सूझा। वह यह कि मैं तो बन गया अंधा और मेरी लड़की बनी मेरी अभिभाविका।'

बनवारी उस शराबी की यह बात सुनकर हँस पड़ा। उसे डांटकर शराबी जोश में बकने लगा—'बुड्ढे कहीं के। मेरी बात का मतलब तो समझते नहीं, उलटा उस पर हँसते हो! मेरी बात ध्यान से सुनो। हँसो मत। वर्ना मैं तुम्हें भी पीट बैठूँगा।

'हाँ, तो मैंने अभी तुम्हें बताया था कि मैं बना अन्धा। इस का मतलब यह है कि मैं आंखें मूँदकर, एक हाथ में लकड़ी लिए हुए बाज़ार में घूमता था। मेरी चार साल की लड़की उस लकड़ी को आगे से पकड़कर मुझे राह दिखाती थी। मैं बार बार पुकारता था—"अँखिया वाले! आखें बड़ी न्यामत हैं।" मेरी चार साल की छोटी बच्ची कमज़ोर-सी आवाज़ में गिड़गिड़ाती थी—"पर-मेश्वर के नाम पर अपाहिज को एक पैसा दो!" मगर ये खुदा-परस्त, खुदगर्ज़ और लालची धनी ऐसे मौकों पर परमेश्वर के नाम पर की गई दोहाई पर भी ध्यान नहीं देते। खैर, फिर-भी इस उपाय से मुझे कुछ-न-कुछ मिल ही जाता था।

'दिन को मैं इस तरह भीख माँगता था और रात को घर से निकल कर छोटी-मोटी चोरियाँ किया करता था। इस अन्धेपन के पेशे ने मुझे और किसी काम का न छोड़ा था। मेरी सारी ज़िन्दगी यदि इस तरह ही बसर हो जाती, तब भी एक बात थी। परन्तु जिस तरह टूटी हुई चिमनी आँच पाकर और अधिक टूट जाती है, उसी तरह मेरी फूटी किस्मत ने एक और चरका खाया।

× × ×

'दसहरे का दिन था। लोग यथाशक्ति अपनी सब चिन्ताओं

को भुलाकर शहर के बाहर एक बड़े मैदान में जमा होरहे थे। इस जगह सैकड़ों रुपयों की आतिशबाज़ी फूँकी जानी थी। खूब बड़ा मेला लगा हुआ था। सड़क पर भारी भीड़ थी। लोगों में खूब धक्कमपेल होरही थी। जहाँ इस तरह से लोग जमा हों, वहाँ भिखमंगों को भी कुछ-न-कुछ प्राप्त होने की आशा रहती ही है, इस कारण मैं भी अपनी लड़की की संरक्षा में इस मेले में गया। आज मैंने और भी अधिक फटे-पुराने कपड़े पहिने थे, ताकि मुझ पर लोगों को अधिक रहम आए।

'मेरी लड़की ने अभी पाँचवां बरस भी समाप्त नहीं किया था, इस कारण वह बेचारी इस भारी भीड़ में घुसते हुए बहुत घबरा रही थी। ख़ासकर जब एक बड़े आदमी, वह भी अपने पिता को ठीक राह पर ले चलने का उत्तरदायित्व भी उसी पर था। परन्तु मेला देखने की उत्सुकता भी बच्चों में स्वाभाविकरूप से होती है, अतः वह बेचारी जिस किसी तरह मुझे लिए चली जारही थी। मैं नकली बना हुआ अन्धा आज सचमुच बड़ी तकलीफ़ में था। जगह-जगह ठोकरें खानी पड़ती थीं। मगर यह मर्ज़ तो अब लाइलाज था। मैं आंखें खोल देता तो मेरी और भी अधिक दुर्दशा होती।

'इसी तरह सड़क पर आँखें बन्द करके चलते हुए मैं किसी चीज़ से अचानक बड़ी ज़ोर से टकरा गया। मेरे हाथ से मेरी लाठी छूट गई, अर्थात् मुझे अपनी लड़की से मिलाने वाली शृङ्खला अब जाती रही। इसी समय मेरी पीठ पर तड़ातड़ कोड़े

पड़ने लगे। मेरी पीठ जल उठी और साथ-ही-साथ मेरी आँखें भी हठात खुल गईं। देखा, एक सिपाहीराम मुझ पर कोड़े बरसा रहे थे। मैं अभागा उन्हीं से जा टकराया था। उस निर्दयी ने यह भी न सोचा कि "बेचारा अन्धा अपाहिज है, टकरा गया तो जाने दो। कुछ जानबूझ कर तो टकराया न होगा।" बस लगा तड़ातड़ कोड़े बरसाने।

'अगले ही क्षण एक और घटना होगई। मेरी छोटी और निस्सहाय लड़की हतबुद्धि-सी होकर इस तरह अपने बापका पिटना देख रही थी। भय के मारे उसकी आँखों से आँसू भी न निकल सके। इसी समय किसी सेठ की मोटर "भों-पों, भों-पों" करती हुई उसके बिलकुल निकट आगई। वह बेचारी घबराकर, बिना कुछ भी देखे-भाले, अपनी जगह से हिली—मगर उसी तरफ़, जिधर से मोटर पर सवार होकर उसकी मौत आरही थी! इधर वह कसाई मुझ पर कोड़े फटकार रहा था, उधर देखते देखते मेरी निस्सहाया लड़की मोटर के नीचे आकर कुचल गई। मैंने उसकी अन्तिम चीख तो सुनी, परन्तु उसे बचा न सका। वह चली गई! मुझ अभागे को अपने ऊपर रोने के लिए ज़िन्दा छोड़कर वह अपनी माँ के पास चली गई।

'उफ़! उस भयङ्कर व्यथा ने मेरा दिल सचमुच तोड़ डाला। मैंने बहुत न कुछ सहन किया था, मगर इतना भीषण प्रहार नहीं सह सका। मेरी लड़की की लाश मोटर के नीचे से निकालकर मेरे सामने रख दी गई। मैं वहीं बैठकर फूट-फूट कर रोने लगा।

मेरे चारों ओर सैंकड़ों आदमी गोल बाँधकर खड़े होगए। परन्तु वे सब मेरे रोने से अपना मनोविनोद ही कर रहे थे। लोग मुझ पर ताने कस रहे थे।

'एक ने कहा—"बना हुआ था!" दूसरा बोला—"अन्धा बनकर ठगने आया था!" तीसरे ने अपनी राय ज़ाहिर की—"बदमाश था!" अचानक मुझे सुनाई दिया, कोइ टीकाधारी कह रहा था— "ईश्वर ने इसे इसके पापों का फल दिया है!"

'बस, बनवारी! उस दिन से पाखण्डी ईश्वर का नाम सुन कर मेरे हाड़-मांस सब जल उठते हैं। अच्छा! तो मैं कह रहा था कि लोग मुझे घेरकर खड़े थे। थोड़ी देर बाद पुलिस आई और लाश सहित मुझे थाने में लेगई। वहाँ दो-चार दिन मुझे तरह-तरह से तंग किया गया। उन दिनों मेरा दिमाग़ सचमुच बिगड़ गया था। आख़िर उन लोगों ने मुझे पागल जानकर छोड़ दिया।

'उसके बाद मैं घर नहीं गया। अहमदाबाद छोड़ कर उत्तर की ओर चला आया। घर जाने की हिम्मत मैं नहीं कर सका। मालूम नहीं, मेरे बाद मेरे बच्चे का क्या हुआ? वह जीता है या मर गया! जब मैं होश में होता हूँ, तब मेरे कानों में अपने बच्चे की करुण चिल्लाहटें गूँजने लगती है। इसी कारण मैंने शराब पीना शुरू कर दिया है। कम-से-कम जब तक शराब के नशे में रहता हूँ तब तक तो उन चिल्लाहटों से छुटकारा मिल जाता है; शराब तो मेरे लिए अमृत है!'

इतना कहकर वह शराबी सिसक-सिसक कर रोने लगा।

यह देखकर बूढ़े बनवारी के दिल पर बड़ी चोट लगी। उसने कहा—"अच्छा; अब सो जाओ।"

मगर शराबी अभी सोना नहीं चाहता था। उस ने कहा—'हां, तुमने यह तो पूछा ही नहीं कि मैं आजकल क्या पेशा करता हूँ? मैं आजकल चोरी करके पेट पालता हूँ। ताले तोड़ने और सेंध लगाने के सब तरीकों में मैं पक्का उस्ताद बन गया हूँ। इस तरह से जो कुछ कमाता हूँ. वह सब शराबखानेमें जा कर उड़ा देता हूँ।'

इसके बाद उस शराबी ने बड़े आवेश से, मानों वह बनवारी को चैलेञ्ज देरहा हो, पूछा—"अच्छा बुड्ढे! अब बता कि परमेश्वर है या नहीं ?"

बनवारी ने उत्तर दिया—"भाई! चाहे कुछ भी क्यों न हो जाय, परमेश्वर तो अवश्य है!"

उस शराबी को मानों आग लग गई। वह ज़मीन पर पैर पटक कर बोला—"तेरी खोपड़ी में बस गोबर-ही-गोबर भरा हुआ है। यदि परमेश्वर है भी, तो सिर्फ़ तेरी इस गोबर-भरी खोपड़ी में है।"

—इसी तरह बड़बड़ाता हुआ वह शराबी उस सुनसान अन्धेरी रात में ही बनवारी के घर से बाहर होगया। बनवारी के बहुत अनुनय-विनय करने पर भी उसने, ठीक उसी तरह परमात्मा पर विश्वास करने वाले व्यक्ति के घर ठहरने से इन्कार कर दिया, जिस तरह प्राचीन ऋषि सदैव संध्या और अग्निहोत्र न करने वाले राजा के घर भोजन करने से इन्कार कर देते थे।

भूल

(१)

उस विकृत परन्तु अत्यन्त गम्भीर चेहरेवाले सरपञ्च ने गूँजती हुई आवाज़ में पुकारा—"कमाण्डर !"

एक पतला-सुकड़ा रूसी नवयुवक बड़ी शीघ्रता से सरपञ्च के सम्मुख आ उपस्थित हुआ। उस ने कहा—"हुज़ूर !"

सरपञ्च ने पूछा—"जानवर कहाँ है ?"

रूसी नवयुवक ने उत्तर दिया—"बाहर खड़ा है।"

सरपञ्च ने कहा—उसे बुला लाओ।"

कमाण्डर एक वार झुक कर बाहर चला गया। कमरे में

फिर से पूरी तरह सन्नाटा छा गया। सरपञ्च की ऊँची कुर्सी के नीचे, उस के पैरों के पास पांच व्यक्ति तलवार लिए हुए खड़े थे। ये लोग क्रान्तिकारी संघ के मुखिया थे। रूसी क्रान्तिकारी लोग अपने दल के रंगरूटों को 'जानवर' नाम से पुकारते थे। आज जिस जानवर को दल के नेताओं के सम्मुख दीक्षा लेने के लिए लाया जाना था, वह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था। रूसी राजघराने से उस का सीधा सम्बन्ध था। अतः दल के ये अधिकारी लोग आज बहुत अधिक सतर्क और गम्भीर थे। इस 'जानवर' का नाम क्रोपेट था। थोड़ी ही देर में क्रोपेट ने कमरे में प्रवेश कर के सरपञ्च को झुक कर प्रणाम किया; परन्तु सरपञ्च ने उस के प्रणाम का कोई जवाब नहीं दिया।

क्रोपेट बड़ी श्रद्धा और सम्मान के साथ सरपञ्च की ओर देखने लगा। सरपञ्च की बड़ी-बड़ी आंखें और खुरदरी चमड़ी वाला सुडौल चेहरा देख कर उस ने समझ लिया कि किसी समय वह एक अत्यन्त सुन्दर मनुष्य रहा होगा, परन्तु इस क्रान्तिकारी संघ में प्रविष्ट होकर, नियमानुसार, उस ने तेज़ाब डालकर अपनी मुखाकृति बिगाड़ ली है। क्रोपेट इस अद्भुत व्यक्ति को बड़े विस्मय के साथ देखने लगा। सरपञ्च भी बड़े ग़ौर से उस की तरफ़ देख रहा था। सम्भवतः वह क्रोपेट के मुख के दर्पण में उस के मनोभावों का अध्ययन करने का प्रयत्न कर रहा था।

इस सन्नाटे में क्रोपेट अपने ही विचारों में मग्न हो गया था; परन्तु थोड़ी देर बाद वह सरपञ्च की गम्भीर आवाज़ सुन कर

चौंक उठा। सरपञ्च उस से पूछ रहा था—"जानवर! यह जानते हो कि तुम यहां क्यों लाए गए हो?"

क्रोपेट ने उत्तर दिया—"जी हां।"

सरपञ्च ने कहा—"तुम्हें यह तो स्मरण है न, कि तुम एक बहुत बड़े ज़मींदार के पुत्र हो? क्या तुम्हें ज्ञात है कि तुम अपनी प्रखर प्रतिभा और सुप्रसिद्ध कुलीनता के आधार पर शीघ्र ही रूस की इस ज़ारशाही के भाग्य-विधाताओं में सम्मिलित हो सकते हो?"

क्रोपेट कुछ कहना चाहता था, परन्तु उसे बोलने का अवसर न देकर सरपञ्च कहता ही चला गया—"अगर चाहो तो यहां से दर्पण लेकर एक बार फिर अपनी असाधारण सुन्दरता का ध्यान कर लो। तुम्हारे इस देव-दुर्लभ रूप के कारण सेण्टपीटर्स-बर्ग की सर्वश्रेष्ठ नवयुवतियां भी तुम से विवाह करने को लालायित हैं,—यहां आते हुए, क्षणिक आवेश में, इस बात को भूल तो नहीं गए?"

क्रोपेट ने बड़ी शीघ्रता से केवल इतना ही कहा—"श्रीमन्! आप मुझे गाली दे रहे हैं।"

जिस तरह परीक्षण-नलिका में थोड़ा-थोड़ा ऐसिड डाल कर वैज्ञानिक कुछ देर तक उस के परिणाम की प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार सरपञ्च भी उपर्युक्त बातें कह कर क्रोपेट के चेहरे की तरफ़ देखने लगा। क्रोपेट अब सरपञ्च के पैरों की तरफ़ ताक रहा था।

कुछ देर बाद सरपञ्च फिर बोला। इस बार उस ने क्रोपेट को 'जानवर' के नाम से सम्बोधित नहीं किया। उस ने कहा—"क्रोपेट, जानते हो—हमारा काम कितना नृशंसतापूर्ण है? हम लोग सन्देहमात्र पर हत्या कर देते हैं, सुखी गृहस्थों पर डाका डालते हैं। कहीं बालक चीख़ न उठे, इस भय से उस का गला घोट देते हैं। मौका पड़ने पर निरपराध स्त्रियों तक का भी हमें वध करना पड़ता है। दूसरी ओर हमारा जीवन भी सुरक्षित नहीं है। प्रतिक्षण हमें पकड़े जाने का, फांसी पर लटकाए जाने का भय रहता है। इस पर हमारे देश के बहुत से यशस्वी और समझदार नेता हमें 'खूनी,' 'लुटेरा' और 'देशद्रोही' समझते हैं। यहां आने से पूर्व तुम ने इन सब बातों पर भी विचार किया है या नहीं?"

क्रोपेट की आँखों में आँसू छलक आए। उस ने सिर झुका कर उत्तर दिया—"ठीक इसी तरह के पवित्र और निष्काम देश-सेवक सदा से मेरी कल्पना के देवता रहे हैं।"

इस पर सरपञ्च ने अपनी जेब से कागज़ का एक टुकड़ा निकाल कर क्रोपेट के हाथों में दिया। चरबी की बड़ी-बड़ी बत्तियों के धुँधले प्रकाश में क्रोपेट उसे पढ़ने लगा—"मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से इस संघ की प्रत्येक आज्ञा का बिना विरोध पालन किया करूँगा। संघ की प्रत्येक बात गुप्त रख कर उस के सदस्यत्व की सब शर्तें पूरी करूँगा।" अपनी छाती का थोड़ा खून निकाल कर क्रोपेट ने इस कागज़ पर हस्ताक्षर भी बना दिए। रूसी क्रान्तिकारी संघ क यही नियम था।

इस के बाद क्रोपेट के धैर्य और सहनशीलता की कठोरतम परीक्षा ली गई। उस के नाखूनों में बड़े-बड़े पिन चुभाए गए, उसे दस मिनट तक लोहे के एक गर्म तख्ते पर, बिना पैर हिलाए खड़ा रहने की आज्ञा दी गई। क्रोपेट यद्यपि आज तक राजकुमारों की तरह पला था, फिर भी वह इन दोनों कठोर परीक्षाओं में इतनी उत्तमता से उत्तीर्ण हुआ कि सरपञ्च का गम्भीर चेहरा भी अत्यधिक प्रफुल्लित हो उठा।

रूसी क्रान्तिकारी दल के मुखियाओं की बैठक उसी स्थान पर शुरू हो गई। इस नए जानवर के सम्बन्ध में विचार होने लगा। सभी मुखियाओं ने क्रोपेट को इसी समय 'नायक' का पद दे देने की सिफ़ारिश की। किसी नए जानवर के लिए यह सम्मान कल्पना से भी परे की वस्तु था। कौन्सिल समाप्त हुई। सरपञ्च ने क्रोपेट को मखमल से मढ़ी हुई एक चौकी पर अपना दाहिना घुटना टेकने का आदेश दिया। 'नायक' बनाने की रस्म अदा की जाने लगी। इस रस्म के अन्त में जब सरपञ्च क्रोपेट की कमर में तलवार बाँधने लगा, तब एक मुखिया ने झट से अपना बायाँ हाथ आसमान में उठा दिया।

सरपञ्च एक साथ दो कदम पीछे हट गया। उस ने बड़ी शीघ्रता से पूछा—"कहो, तुम्हें इस में क्या आपत्ति है?"

वह मुखिया अपनी बात कहते हुए सम्भवतः कुछ घबराहट अनुभव कर रहा था। उसे शीघ्रता से उत्तर देते हुए न पाकर सरपञ्च ने बड़ी अधीरता से पूछा—"कहो, जल्दी कहो—तुम्हें

इस कार्रवाई में क्या आपत्ति है ? इस तरह मुफ़्त में समय खराब मत करो।"

वह मुखिया घबराई-हुई-सी आवाज़ में बोला—"सरपञ्च ! किसी 'जानवर' को सीधा 'नायक' बनाने के लिए एक आवश्यक बात यह भी है कि तेज़ाब, नश्तर या इसी प्रकार की किसी अन्य चीज़ द्वारा उस की मुखाकृति बिगाड़ दी जाए।"

सरपञ्च विचलित हो उठा। एक मिनट तक चुपचाप इस नई समस्या पर विचार करते रहने के उपरान्त वह जल्दी-जल्दी बड़बड़ाया—"नहीं। यह असम्भव है। क्रोपेट के सुन्दर मुख पर तेज़ाब डालने की आज्ञा मैं नहीं दे सकता।"

क्रोपेट को नायक बनाने की रस्म पूरी कर दी गई। सभी सरदार आश्चर्य से सरपञ्च की ओर देख रहे थे। उन्हें विस्मय था कि आज सरपञ्च इतना विचलित क्यों हो गया है। परन्तु नियमानुसार वे अब सरपञ्च की आज्ञा का विरोध न करने के लिए बाधित थे। सभी सरदारों ने बारी-बारी से क्रोपेट के साथ हाथ मिलाया। सब से अन्त में सरपञ्च ने क्रोपेट को गले लगा कर उसे अपने दल में सम्मिलित कर लिया।

(२)

'मास्को-ख़रकाफ़-मेल' के दूसरे दर्जे में क्रोपेट अकेला सफ़र कर रहा था। उस का चेहरा आज अत्यन्त गम्भीर था। आँखों से विनय और आत्म-विश्वास का भाव टपक रहा था। अभी हाल ही में वह क्रान्तिकारी दल के लिए एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य

करके आ रहा था। वह मास्को से रूस के जेलों के सम्बन्ध का सम्पूर्ण पत्र-व्यवहार चुरा कर ला रहा था। क्रान्तिकारी दल निरन्तर छः मास से जिस बात के लिए जी तोड़ कर कोशिश कर रहा था, उस में सफलता प्राप्त करके भी क्रोपेट के चेहरे पर प्रसन्नता का कोई चिह्न नहीं था। उन रहस्य-मय कागज़ों को अपने बेढंगे-से बिस्तरे में लपेट कर क्रोपेट उस से ढासना लगाए बैठा था। जिस प्रकार भारी तूफ़ान गुज़र जाने के बाद समुद्र फिर से अत्यन्त गम्भीर स्वरूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार क्रोपेट के मुख की यह शान्त मुद्रा भी निकट भूत की किसी विकट हलचल का अवशिष्ट रूप थी। इस मामले में क्रोपेट जेल-महकमे के दो ग़रीब क्लार्कों की हत्या करके सफलता प्राप्त कर सका था, सम्भव है कि उस की गम्भीर शान्ति का यह भी एक कारण हो।

क्रोपेट स्वभाव से बहुत ही कोमल और दयापूर्ण प्रकृति का मनुष्य था। उस की बड़ी-बड़ी आँखों से एक अद्भुत एकाग्रता और चञ्चल सन्तोष का भाव टपकता था। पिछले दो सालों के जीवन में, अवसर पड़ने पर, उस ने अनेकों हत्याएँ भी की थीं, परन्तु भारतवर्ष के निष्काम योगियों की तरह उस के निर्मल हृदय पर इन नृशंस हत्याओं की कोई छाप नहीं पड़ी थी। क्रान्तिकारी दल में उस का एक विशेष स्थान था। दल की कोई भी बात उस की सलाह लिए बिना न की जाती थी। इस पर भी उस का स्वभाव संघ के सदस्यों के लिए एक पहेली था। क्रोपेट का हृदय एक ओर फूल से भी अधिक नरम था और दूसरी ओर वज्र से

भी अधिक कठोर। आश्चर्य तो यह था कि कभी-कभी उस के चरित्र के ये दोनों सर्वथा प्रतिकूल पहलू, केवल कुछ घण्टों के अवधान ही से क्रियात्मक रूप धारण किया करते थे। कभी-कभी वह, रूसी ग्रामीण किसानों के झोंपड़ों में जाकर सम्पूर्ण रात किसी निराश्रय रोगी के सिरहाने बैठ कर गुज़ार देता, और उस से अगले प्रातःकाल ही, किसी सरकारी खज़ाने पर डाका डालने के लिए उस की बाहुओं में खुजली होने लगती थी। यदि कभी बाधित होकर उसे कहीं कोई नरहत्या करनी भी पड़ती तो वह उस व्यक्ति के असहाय आश्रितों की छिपेतौर से सहायता करना अपना कर्तव्य समझता था।

क्रोपेट अपने बिस्तरे से ढासना दिए हुए ही, पहाड़ी उपत्यका के हरे-भरे जंगलों को देखने लगा। आसमान में बादल छाए हुए थे। मालूम होता था कि बहुत शीघ्र खूब जम कर पानी बरसेगा। इस ऊँचे-नीचे मार्ग पर डाकगाड़ी बरसाती कीड़ों की तरह गोल-मोल होकर चल रही थी। सब ओर सन्नाटा था। इसी तरह धीरे-धीरे चल कर गाड़ी 'ओरेल' जंकशन पर आकर खड़ी हो गई। इस समय तक पानी पड़ना शुरू हो गया था। ठण्डी हवा चल रही थी, अतः क्रोपेट अपना लबादा ओढ़कर स्टेशन के बुकस्टाल की तरफ़ गया। वहाँ लकड़ी के चौखटों में ७ जुलाई के विभिन्न अखबारों के समाचार जड़े हुए थे। क्रोपेट ने उड़ती निगाह से उपेक्षा के साथ इन नोटिसों की ओर देखा। यह क्या! क्रोपेट सहसा चौंक उठा। क्षणभर के लिए उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों भयंकरता से पृथवी हिल रही है। दैनिक अखबारों के इन विज्ञापनों पर मोटे-

मोटे लाल अक्षरों में छपा हुआ था —

७ जुलाई......

क्रान्तिकारी संघ का भण्डाफोड़ !

संघ का सरपञ्च पकड़ा गया !

पोलीस-विभाग के मुख्य अध्यक्ष—

मोशिये ड्रावर को भारी इनाम

क्रोपेट ने बड़ी मुश्किल से अपने को सँभाला। सम्पूर्ण बल संग्रह करके वह स्टाल के निकट पहुँचा। चुपचाप ७ जुलाई के दो-तीन अखबार खरीद कर वह अपने डिब्बे में लौट आया। इसी समय सीटी देकर डाकगाड़ी चल दी। क्रोपेट अखबार पर नज़र गड़ा कर उसे पढ़ रहा था। उसे मालूम हुआ कि सरपञ्च को गिरफ्तार करने वाला व्यक्ति उसका अपना सगा भाई मोशिये ड्रावर ही है!

इस के बाद क्रोपेट खरकाफ़ नहीं गया। अगले जंकशन पर वह यह डाकगाड़ी छोड़ कर साइबेरिया की तरफ़ चला गया।

(३)

सरपञ्च को गिरफ़्तार हुए तीन मास बीत चुके हैं। उन्हें शीघ्र ही प्राणदण्ड दिया जाने वाला है। क्रान्तिकारी दल का संगठन अब नष्टप्राय-सा हो गया है। मातृभूमि की स्वतन्त्रता की उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा करने वाले दल अब करीब-करीब निराश हो चुके हैं। कुछ क्रान्तिकारियों ने सरपञ्च को छुड़ा लाने का प्रयत्न भी किया था, परन्तु वे स्वयं ही गिरफ़्तार हो गए। अतः अब किसी व्यक्ति में यह साहस शेष नहीं रहा कि वह सरपञ्च की रक्षा के लिए कोई प्रयत्न करे।

आश्चर्य तो इस बात का है कि सरपञ्च के कैद होने के बाद से ही उन का दायाँ हाथ क्रोपेट भी लापता है। सरपञ्च की गिरफ़्तारी से दस–बारह दिन पूर्व संघ ने उसे एक आवश्यक काम के लिए मास्को भेजा था। उस दिन के बाद से यह मालूम नहीं हुआ कि क्रोपेट कहां चला गया है। शुरू-शुरू में दल के लोग यह समझते थे कि सम्भवतः सरपञ्च की सहायता करने के उद्देश्य से ही क्रोपेट इस प्रकार अन्तर्धान हो गया है; परन्तु इतने दिनों तक उस का कोई समाचार न पाकर लोगों का यह विश्वास लगभग मिट गया है।

अब क्रान्तिकारी संघ में, क्रोपेट के सम्बन्ध में दो विचार हैं। दल के बहुमत का यह पूर्ण विश्वास है कि असल में क्रोपेट स्वयं खुफ़िया विभाग का कोई उच्च अधिकारी ही था। वह सरपञ्च को गिरफ़्तार कराने की इच्छा से ही इस संघ में सम्मिलित हुआ था। अपनी इस स्थापना के लिए ये लोग दो युक्तियां देते हैं। इस का

पहला प्रमाण यह है कि सरपञ्च को गिरफ़्तार करने वाला व्यक्ति क्रोपेट का सगा भाई मो० ड्रावर है, जो सेण्टपीटर्सवर्ग पोलीस का मुख्य अध्यक्ष है। इन लोगों की दूसरी युक्ति है,—क्रोपेट का इस प्रकार सहसा गुम हो जाना। अन्य लोगों का यह मत है कि क्रोपेट सरकार से डर कर कहीं छिप गया है। ये आपत्ति के दिन निकल जाने पर वह फिर से क्रान्तिकारी दल की नवीन आयोजना करेगा।

(४)

साइबेरिया के पुराने किले में लोहे का एक रौद्ररूप पिंजरा रक्खा हुआ था। ओस से बचाने के लिए पिंजरे की छत टीन डाल कर बनाई गई थी। नवम्बर का महीना था। शिद्दत की सरदी थी। चारों तरफ़ बरफ़ के ऊँचे-ऊँचे अम्बार लगे हुए थे। सन-सनाती हुई तेज़ बरफ़ीली हवा चल रही थी। दोपहर का समय था, परन्तु घने कुहरे की धुँध के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि शीघ्र ही रात होने वाली है। लोहे के इस भयंकर पिंजरे में दो एक फटे-पुराने कम्बल ओढ़ कर सरपञ्च बैठा हुआ था। किसी ज़माने में यह पिंजरा ज़ार के शेर रखने के काम में आता था। कहते हैं कि यह पिंजरा उन दिनों आजकल की अपेक्षा बहुत अच्छी हालत में था—तब इस में सरदी और हवा का इतना अबाधित प्रवेश नहीं था। कुछ भी हो, इतना तो फिर भी कहा जा सकता है कि सरपञ्च इस पिंजरे में उदास नहीं था। उस की शारीरिक दशा अवश्य बिगड़ गई थी, परन्तु उस के चेहरे पर किसी प्रकार के दुःख का भाव दिखाई नहीं देता था। वह बिलकुल गम्भीर और

शान्त रहता था। पहरेदारों ने भी शायद ही कभी उस की आवाज़ सुनी हो। मृत्युदण्ड के साधारण कैदियों की तरह वह चिड़चिड़ा या ग़मग़ीन नहीं बन गया था। किसी सन्तरी को उस से किसी प्रकार की शिकायत नहीं थी। वह इस समय कम्बलों में सिकुड़ कर शान्त-भाव से, सामने की बर्फ़ से ढकी हुई पहाड़ की चोटी की ओर देख रहा था।

पिंजरे के बाहर आठ-दस सशस्त्र सिपाही पहरे के लिए नियुक्त थे। रूस के ये सिपाही बिलकुल उजड्ड और बेपरवाह होते थे। ये सब लोग एक अँगीठी के चारों ओर, टोली बना कर गप्पें लगा रहे थे। मुफ्त में बारी-बारी से पिंजरे के चारों तरफ़ मार्चिङ्ग करते फिरना, उन्हें अनावश्यक और मूर्खतापूर्ण प्रतीत होता था।

इन में से एक सिपाही खूब लम्बी दाढ़ी-मूँछोंवाला था। इस लिए उस के साथी उसे 'दढ़ियल' कह कर बुलाते थे। यह बड़ा ही हँसोड़ और बातूनी था। अन्य सब सिपाही उस के साथ ड्यूटी पर जाने के लिए उत्सुक रहा करते थे। करीब दो मास से ही वह इस किले की पोलीस में सम्मिलित हुआ था। उस का पूर्णपरिचय लोग इतना ही जानते थे कि पहले वह एक कोयले की खान में मज़दूर का काम किया करता था, परन्तु पीछे से बाबू बनने की प्रवृत्ति उसे इस महकमे में खींच लाई। वह अपनी दाढ़ी-मूँछों से बहुत प्रेम करता था। उस में एक विचित्रता यह भी थी कि वह सदैव दो कोट, दो पतलूनें और दो कमीज़ें पहिना करता था। दूसरे सिपाही जब इस पर उस की मज़ाक उड़ाते, तब वह जवाब

दिया करता—"बाबा, क्या करूँ ? उम्र भर बन्द और गरम कोयले की कान में काम किया है, अब यह सरदी, यह ठण्डी हवा कैसे बरदाश्त करूँ ?"

बातचीत के सिलसिले में एक सिपाही ने कहा—"यार ! ग़ज़ब की सरदी है।"

दूसरा बोला—"यह झंझट कब समाप्त होगा ?"

दढ़ियल बोला—"इस महीने के अन्त तक यह मामला अवश्य समाप्त हो जाएगा।"

पहले सिपाही ने पूछा—"क्यों, क्या फाँसी की तारीख मुकर्रर हो गई ?"

ऊँचे स्वर से हँसते हुए दढ़ियल ने कहा—"नहीं, फरमान की ज़रूरत ही क्या है ? यह शिद्दत की सरदी ही इस क़ैदी का काम तमाम कर देगी। देखो न, किस तरह सिकुड़ा हुआ पड़ा है—जैसे लिपटा हुआ बिस्तरा हो।"

सब सिपाही खिलखिला कर हँसने लगे।

बस, दढ़ियल की सभा का रंग जम गया। वह तिलस्मी कहानियों की तरह अपने कोयले की कान के अनुभव सुनाने लगा। धीरे-धीरे कुहरा साफ़ हो गया। सूर्य भगवान के दर्शन सुलभ हो गए।

अचानक दूर पर बैरक के पीछे से "आग, आग" का ऊँचा शोर सुन कर यह मण्डली इस तरह बर्खास्त हुई, जिस तरह पत्थर की चोट खा कर भिड़ों का छत्ता खाली होता है। सब लोग एक साथ उसी तरफ़ भागे। इसी समय बैरक की ओर से एक सिपाही

ऊँचे स्वर में आग लग जाने की सूचना देता हुआ पिंजरे की तरफ़ आया। सब सिपाही तो पहले ही उसी तरफ़ भागे जा रहे थे। दढ़ियल महाशय भी इसी टोली के साथ भागने का उद्योग कर रहे थे। दढ़ियल ने भारी भरकम दोहरे कपड़े पहिन रक्खे थे, अतः जब वह ज़ोर से न दौड़ सकने के कारण सब से पिछड़ गया, तब उस ने चिल्लाना शुरू किया—"अरे नालायको ! इस कैदी को अकेला छोड़ कर कहां भागे जा रहे हो।" परन्तु किसी ने दढ़ियल की इस बात का जवाब नहीं दिया। यह देख कर दढ़ियल ठहर गया। इसी समय बैरक की ओर से दौड़ कर आया हुआ सिपाही दढ़ियल के पास आकर बोला—"चलो, कैदी पर हम दोनों पहरा दें।"

दढ़ियल बिना आनाकानी किए वापस लौट आया।

सरपञ्च भी कौतूहल के साथ अग्नि की उन प्रचण्ड लपटों की तरफ़ देख रहा था। इसी समय अचानक उसे पुकारने की धीमी आवाज़ सुनाई दी। कोई बरसों से परिचित स्वर में कह रहा था—"सरपञ्च !"

सरपञ्च ने आश्चर्य के साथ पीछे की तरफ़ मुड़ कर देखा। दढ़ियल उसे पिंजरे के बाहर खड़ा होकर बुला रहा था। दो-एक क्षण तक दढ़ियल की ओर विस्मय के साथ देखते रह कर सरपञ्च भी चिल्ला उठा—"क्रोपेट !"—सरपञ्च खुशी से उन्मत्त होगया था।

समय अधिक नहीं था। दढ़ियल ने अपनी दोहरी पोशाक उतार कर सरपञ्च को पहिनने को दी। सरपञ्च के पुराने कपड़ों

को इस तरह डाल दिया गया कि वे किसी लेटे हुए आदमी के समान प्रतीत हों। इस के बाद क्रोपेट ने दरवाज़ा खोल कर सरपञ्च को पिंजरे से बाहर निकाल लिया।

पिंजरे के बाहर, आग की अँगीठी अभी तक उसी प्रकार सुलग रही थी। उस के चारों ओर बैरक की तरफ़ भागे हुए सिपाहियों की बन्दूकें अस्तव्यस्त रूप में बिखरी पड़ी थीं। इन में से तीन बन्दूकें लेकर ये तीनों आदमी, सैनिक वेश में किले के फाटक की ओर चले।

ये तीनों सिपाही कदम मिलाते हुए फाटक पर पहुँचे। सरपंच को बीच में करके उस के एक ओर क्रोपेट चल रहा था और दूसरी ओर बैरक की तरफ़ से भाग कर आया हुआ सिपाही। किले के फाटक पर भी इस समय केवल दो-तीन सिपाही ही बचे थे। शेष सब अग्निकांड का दृश्य देखने के लिए चले गए थे। ये लोग भी फाटक से दस-पन्द्रह गज़ दूर, धूप में बैठ कर सम्भवतः आग के सम्बन्ध में ही बात-चीत कर रहे थे। दो अन्य सिपाहियों के साथ दढ़ियल को किले से बाहर जाता हुआ देख कर एक पहरेदार ने बैठे-बैठे ही पूछा—"क्यों दढ़ियल, कहाँ चले हो ?"

दढ़ियल ने बिना ठहरे ही उत्तर दिया—"अरे यार ! हमारा कमाण्डर भी बड़ा मनहूस है। आज इतने दिनों बाद जाकर तो एक दिलचस्प तमाशा देखने को मिला और वह हमें इसी घड़ी चौकी पर इस मामले की इतला देने के लिए भेज रहा है।"

पहरेदार एक बार धीमे-से हँस कर फिर अपनी बात-चीत

में लग गए। ये तीनों व्यक्ति फाटक के बाहर आकर दो-तीन घण्टों में ही, बड़ी-बड़ी चट्टानों से परिपूर्ण उस पहाड़ी उपत्यका के घने जंगल में छिप गए।

(५)

क्रान्ति की ज्वालाएँ अब देश-भर में व्याप्त हो गईं। दल के नेताओं को इस बात का मौका ही न मिला कि वे सरपञ्च को मौत के मुँह से बचा लाने के उपलक्ष्य में कोई खुशी मना सकें। उस दिन किले के फाटक से बाहर आकर जब सरपंच को मालूम हुआ था कि क्रोपेट के निर्देश से ही उस का वह साथी स्वयं बैरक में आग लगा कर पिंजरे की तरफ़ भाग आया था, तब सरपञ्च ने बड़ी कृतज्ञतापूर्ण भाषा में उन दोनों को धन्यवाद दिया था। इस के अतिरिक्त इन लोगों के साथ अन्य कोई विशिष्ट व्यवहार नहीं किया गया था। सरपंच का स्वास्थ्य अब बहुत बिगड़ गया था, अतः उस ने अब अपने मन में यह दृढ़ धारणा कर ली थी कि क्रान्तिकारी संघ के सम्बन्ध में दो-एक विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य और करके, वह क्रोपेट को ही संघ का सरपंच बना देगा। दिल ही दिल में उस ने क्रोपेट के दूसरे साथी को भी शीघ्र ही नायक बना देने का पूर्ण निश्चय कर लिया था। परन्तु अभी तक उस ने अपना यह विचार क्रोपेट तक को भी नहीं बताया था। नए-नए कामों की धुन में उसे इस बात का अवसर ही नहीं मिला था।

आज एक बड़े गम्भीर विषय पर विचार करने के लिए क्रांतिकारी संघ के नायकों की विशेष बैठक हो रही थी। सरपञ्च की

ऊँची कुर्सी के नीचे, उस के ठीक सामने, क्रोपेट भी अपने स्थान पर बैठा हुआ था। इसी समय सरपंच ने अपनी जेब से एक छोटा-सा फोटो बाहर निकाला। क्रोपेट यह फोटो देखते ही चौंक उठा। उस के मुख से अनायास ही निकला—"ओह मोशिये लीमैन!"

सरपञ्च आश्चर्य के साथ क्रोपेट के मुँह की तरफ़ देखने लगा। उस ने पूछा—"क्रोपेट, तुम इस आदमी को जानते हो?"

क्रोपेट ने इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं दिया। उस की नसों में खून बड़े वेग से गति कर रहा था। क्रोपेट को चुप देख कर सरपञ्च ने गूँजती हुई आवाज़ में फोटो के नीचे लिखा हुआ नाम पढ़ा—"मोशिये लीमैन, एस० पी० के लार्ड मेयर।"

इस के बाद सरपञ्च ने एलान किया—"आगामी १० मई की रात तक इस व्यक्ति की हत्या हो जानी चाहिए।"

क्रोपेट अब चुप न रह सका। उस ने लड़खड़ाते हुए स्वर में सरपञ्च की इस बात का प्रतिवाद किया—"ओह, मोशिये लीमैन तो बहुत ही भला आदमी है, उस का वध करने की क्या आवश्यकता आ पड़ी है!"

तेज़ निगाह से क्रोपेट के चेहरे की तरफ़ देख कर सरपञ्च ने क्रोध-भरे स्वर में आदेश दिया—"चुप रहो।"

क्रोपेट समझ गया कि उस से अपराध हुआ है। वह सिर नीचा करके चुप हो गया।

लार्ड मेयर के वध का काम किस के सपुर्द किया जाय, इस

के लिए पर्चियाँ डाली गईं। भाग्यवश क्रोपेट का ही नाम निकला। क्रोपेट के चेहरे का रँग फीका पड़ गया। आँखें नीचे की ओर झुक गईं। इसी समय क्रोपेट की ओर फोटो बढ़ा कर सरपञ्च ने पूछा— "क्रोपेट! तुम तैयार हो?"

क्रोपेट ने काँपते हुए हाथों से वह फ़ोटो ले लिया। यह स्वीकृति का चिह्न था। सरपञ्च के साथ अन्य सब सरदारों ने खड़े होकर क्रोपेट की सफलता के लिए ईश्वर से प्रार्थना की।

(६)

बचपन में सुने हुए किसी मधुर संगीत की सुखद स्मृति की तरह क्रोपेट को अपने जीवन का कोई अतीत, रोचक पहलू याद हो आया। उस का हृदय झनझना उठा। बड़ी तपस्याओं और साधनाओं की सहायता से उस ने अपनी जिन मानसिक भावनाओं का दमन किया था, वे सब मोशिये लीमैन की स्मृति के साथ ही साथ और भी अधिक प्रबलता से उस की आंखों के सम्मुख नाचने लगीं। क्रोपेट उन भावों का मुकाबला नहीं कर सका। मोशिये लीमैन के बँगले के अहाते वाले बाग़ का .खाका, अपने साथ उस के मानसिक नेत्रों के सम्मुख जो मनोहारी चित्र लाया, उसे क्रोपेट हठात् अपने मस्तिष्क से दूर नहीं कर सका। उस ने अपने हृदय को ढीला छोड़ दिया। उठती हुई जवानी में उस का किशोर और उत्साही हृदय जिस अनिन्द्य-सुन्दरी देवी की प्रतिमूर्ति का दिन-रात चिन्तन किया करता था, बरसों के बाद आज फिर वही मूर्ति उस के नेत्रों के सम्मुख घूमने लगी। क्रोपेट, क्रान्तिकारी-

दल का नायक क्रोपेट, मोशिये लीमैन की एक मात्र कन्या—अपनी प्रणयिनी, रोज़ेलिन की याद में मग्न हो गया।

मो० लीमैन एक बहुत ही लब्धप्रतिष्ठ, उदार, मानी और सरल प्रकृति के मनुष्य थे। वर्षों से सेण्टपीटर्सबर्ग की जनता, एक बहुत बड़े बहुमत से लगातार उन्हीं को अपना मेयर चुन रही थी। लार्ड मेयर का बंगला शहर से बाहर एक बड़े बाग़ में था। उन की पत्नी का, बरसों हुए देहान्त हो चुका था। उन के दो पुत्र बड़े हो कर उच्च सरकारी ओहदों पर काम कर रहे थे। इस बंगले में वह अपनी एकमात्र कन्या रोज़ेलिन के साथ रहा करते थे। रोज़ेलिन देव-कन्या के समान आकर्षक और चञ्चल बालिका थी।

आज जो युग अतीत के काले पर्दे की ओट में छिप चुका है, उस की स्मृति क्रोपेट को अधीर बनाने लगी। क्रोपेट को वे दिन स्मरण हो आए, जब उस के पिता उसे अपने साथ लेकर मोशिये लीमैन के बँगले पर, उन से मिलने के लिए जाया करते थे। उन दिनों क्रोपेट सोलह–सत्रह बरस का एक तेजस्वी बालक था। मो० लीमैन से क्रोपेट के पिता की प्रगाढ़ घनिष्ठता थी। दोनों प्रायः एक दूसरे के यहाँ आते जाते रहते थे। सायंकाल के समय, जब वे दोनों प्रौढ़ मित्र अपनी किसी उधेड़बुन में मस्त हो जाते थे—तब बालक क्रोपेट और बालिका रोज़ेलिन सहन के हरे-भरे निकुञ्जों में एक साथ खेला करते थे। वहाँ और कोई नहीं होता था;—होता था एक किशोर अवस्था का बालक और एक बारह-तेरह बरस की बालिका। वे दोनों खेलते थे, कूदते थे, तसवीरें देखते थे, धीरे-

धीरे टहलते थे और कभी-कभी खूब तन्मय होकर आपस में बातें भी किया करते थे। वे दोनों अबोध बालक थे, उन्हें कोई दुख नहीं था, कोई चिन्ता नहीं थी—फिर भी उन के पास तन्मय होकर आपस में बातें करने के लिए बातों का असीम कोष था। बाग़ की बेलें, घर के कुत्ते, तालाब की मछलियां और मौसमी फल उन की बातचीत के कभी न थकानेवाले विषय होते थे। दोनों का हृदय बिलकुल निष्कलंक, अबोध और पवित्र था। फिर भी वे एक-दूसरे से असाधारण स्नेह करते थे। उन के इस स्नेह में कोई वासना या भौतिक इच्छा नहीं होती थी।

परन्तु काल के एक मधुर अन्तराल ने धीरे-धीरे इन दोनों किशोर हृदयों को चुपचाप एक-दूसरे के साथ सी दिया। मालूम नहीं, यह बात किस दिन हुई। जिस तरह क्रोपेट और रोज़ेलिन अपने अनजान में ही, केवल काल के अवधान से, बालक से नवयुवक बन गए, ठीक उसी तरह इन बालकों का निष्कलङ्क प्रेम भी न जाने किस मुहूर्त्त में नवयुवक और नवयुवती का प्रेम बन गया। अब प्रेम के साथ ही साथ वे एक-दूसरे को चाहने भी लगे। उन के पारस्परिक व्यवहार में धीरे-धीरे एक .खास गम्भीरता का समावेश हो गया।

क्रोपेट की इन मधुर स्मृतियों का सब से अधिक मार्मिक स्थल था—मोशिये लीमैन के सहन का एक 'ओक' वृक्ष। यह वृक्ष बाग़ की एक दिशा में छोटे से स्वच्छ-जल-परिपूर्ण तालाब के किनारे पर छाया हुआ था। इस की घनी छाया के नीचे एक बैञ्च

पड़ी रहा करती थी। इस बैञ्च के साथ क्रोपेट के जीवन के सब से अधिक मनोरञ्जक और कोमल अध्याय का इतिहास सम्बन्धित है। इसी बैञ्च पर बैठे-बैठे एक दिन क्रोपेट और रोज़ेलिन के किशोर हृदयों ने यह अनुभव किया था कि अब वे एक-दूसरे को चाहने लगे हैं। इस पवित्र ओक की मधुरतम स्मृति के साथ ही साथ क्रोपेट को उस युग की एक पुरानी घटना स्मरण हो आई। वह पुलकित हो उठा। उस का क्रान्तिकारी हृदय देशभक्ति आदि सभी मज़बूत से मज़बूत बन्धन तुड़वा कर एक वार तो उस मधुर स्मृति के साथ झनझना ही उठा। उसे वह दिन याद आया—जिस दिन मई मास की एक स्वच्छ रात में दोनों हृदय पहले-पहल एक-दूसरे से मिले थे। उस समय आसमान से त्रयोदशी का चाँद पृथवी पर अनन्त चाँदनी बरसा रहा था। क्रोपेट और रोज़ेलिन यद्यपि बरसों तक एक-दूसरे के साथ खेले-कूदे थे; परन्तु फिर भी एक तरह से वह दिन ही उन का प्रथम मिलन-दिवस था; उस दिन की स्मृति में दोनों ने उस पवित्र ओक के तने पर एक साथ एक तेज़ चाकू से दो अक्षर खोदे थे—'के' और 'आर' (K. R.)। क्रोपेट के मानसिक नेत्रों के सम्मुख ये दोनों अक्षर सौ-सौ गुना बड़े होकर नाचने लगे। वह धीरे से गुनगुनाया—

"R. K."

परन्तु अगले ही क्षण वह सहसा चौंक कर उठ खड़ा हुआ। इस तरह से—जैसे कोई मधुर स्वप्न देखते-देखते उस की नींद उचट गई हो। वह धीरे-धीरे टहलने लगा। भूतों के नगर की तरह

उस के वे सब कोमल विचार एक क्षण में ही, न जाने कहाँ, विलीन हो गए। पहले उसे अपनी स्थिति याद आई—'वह तो रूसी क्रान्तिकारी संघ का नायक है!' इस के बाद उसे अपना कर्तव्य स्मरण आया—'आज ६ मई का दिन है!'

(७)

साधारण मनुष्य समझते हैं कि केवल त्याग, दया और तितिक्षा-मय जीवन के लिए ही साधना की आवश्यकता होती है। परन्तु उन्हें मालूम नहीं कि कभी-कभी हत्या और घात भी एक ऐसी महती साधना का विषय बन जाते हैं कि देवताओं तक के लिए उस ऊँची साधना तक पहुँचना कठिन हो जाता है। आज क्रोपेट इसी महान साधना की ताक में था। वह छिपे-छिपे, अपने को बचाता हुआ, मो० लीमैन के बंगले में प्रविष्ट होना चाहता था, परन्तु उसे इस की आवश्यकता नहीं थी। एक भरी हुई दुनाली पिस्तौल ओवरकोट में छिपा कर वह धीरे-धीरे सहन के बाग़ में दाखिल हुआ। बाग़ में एक माली, रात अधिक हो जाने के कारण फव्वारे का पानी रोकने का प्रयत्न कर रहा था। क्रोपेट को देख कर उसने अदब से सलाम किया। क्रोपेट चौंक उठा। उस से सलाम का जवाब तक भी नहीं दिया गया। माली ने डरते-डरते पूछा—"हज़ूर! यदि हुक्म हो तो मालिक को जगा दूँ।"

क्रोपेट ने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया। उस का दिल इतने वेग से धड़क रहा था कि यदि कुछ भी अधिक देर तक वह माली के सामने खड़ा रहता तो उस के बेहोश हो जाने में कोई सन्देह

नहीं था। अतः वह थोड़ा-सा पानी पीने की इच्छा से बाग़ के तालाब की ओर चल दिया। माली एक बार आश्चर्य से क्रोपेट की तरफ़ देख कर फिर अपने काम में लग गया।

क्रोपेट के पैर, उस के न चाहते हुए भी, ज़बरदस्ती उसे ओक वृक्ष के नीचे रक्खी हुई बैञ्च की तरफ़ खींच ले गए। वह बैञ्च आज भी ठीक उसी स्थान पर रक्खी हुई थी। क्रोपेट कटे हुए वृक्ष की भाँति इस बैञ्च के ऊपर गिर गया।

आज भी आसमान से चाँद टेढ़ा हो कर, इसी ओक वृक्ष के नीचे बैञ्च पर लेटे हुए क्रोपेट की तरफ़ झाँक रहा था, परन्तु कुहरे के कारण उस की सुधा उतनी स्वच्छ नहीं थी। क्रोपेट ने सिर ऊँचा करके उस पवित्र ओक वृक्ष की ओर देखा। आँखें धीरे-धीरे स्वयं अपने लक्ष्य पर जाकर अटक गईं। क्रोपेट ने सोचा था कि वे अक्षर तो अब तक मिट ही चुके होंगे, इस लिए अब उस तरफ़ देख लेने में हर्ज ही क्या है; परन्तु उस गरिमाशाली ओक वृक्ष के तने की ओर देखते ही क्रोपेट को अत्यधिक विस्मय हुआ। उस ने देखा कि वे दोनों अक्षर आज भी इस तरह चमक रहे हैं, मानों उन्हें हाल ही में बनाया गया हो। उसी क्षण क्रोपेट यह भी समझ गया कि यह कृति किस की है। अब वह लेटा न रह सका। ओक का वृक्ष उसे चुम्बक की तरह अपनी तरफ़ खींचने लगा। अनायास ही क्रोपेट उस वृक्ष तक पहुँच गया। तने की तरफ़ देख कर एक बार वह फिर गुनगुनाया—

"K. R."

क्रोपेट 'R' का एक हलका-सा चुम्बन लेकर पागलों की तरह वहाँ से भाग खड़ा हुआ। वह तालाब से एक घूँट पानी तक भी न पी सका।

पागलों की-सी अकल्पनीय दशा में पहुँच कर भी क्रोपेट सँभल गया। उस ने बड़ी साधना से अपनी सम्पूर्ण शक्ति को हृदय में केन्द्रित किया। इस के बाद अपनी प्रताड़िता, अवमानिता, जीर्णवसना, रूस-माता के दयनीय चित्र का मन ही मन स्मरण कर के उस ने अपने रिवाल्वर पर हाथ रक्खा। उस की निर्बलता काफ़ूर हो गई। अपने पिछले जन्म की तरह से वह मो० लीमैन की सम्पूर्ण स्मृतियों को कुछ देर के लिए भूल-सा गया।

शीघ्रता से कदम बढ़ाते हुए वह लार्ड मेयर के संगमरमर के चबूतरे पर सवार हो गया। क्रोपेट स्वयं अपने से डर रहा था; अतः वह कुछ भी देरी किए बिना पिस्तौल हाथ में लेकर सीधा बँगले के बड़े हाल में प्रविष्ट हो गया। हाल में गैस का एक बड़ा हण्डा जल रहा था। वहां कोई आदमी नहीं था, केवल हण्डे का पैट्रोलियम वायु के दबाव से ऊपर चढ़ते हुए हलकी-सी परन्तु गम्भीर ध्वनि उत्पन्न करके, हाल की निस्तब्धता को भंग कर रहा था। हाल के उत्कट प्रकाश में पहुँच कर क्रोपेट फिर से शिथिल पड़ गया। इस हाल के दाईं ओर रोज़ेलिन का शयनागार था और बाईं ओर तीन-चार कमरे छोड़ कर, लार्ड मेयर के सोने का कमरा था। रोज़ेलिन इस समय क्रोपेट से केवल दस–बारह गज़ के अन्तर पर ही सो रही है—इस विचार ने क्रोपेट को एकदम

क्रिया-हीन बना दिया। लक़वे के बीमार की तरह उस का सारा शरीर काँपने लगा। उस के माथे से पसीने की धाराएँ छूटने लगीं, मुँह लाल हो गया और हृदय बड़े वेग से धड़कने लगा। इस घबराहट की दशा में उस के हाव-भाव और भी अधिक मनोहर हो उठे थे।

अचानक यह क्या दृश्य दिखाई दिया! न मालूम किस कारण, किसी प्रकार की आहट पाए बिना ही, कुमारी रोज़ेलिन अपने सोने की पोशाक में शयनागार से बाहर निकल कर, धीरे-धीरे गैस के उस हण्डे के नीचे आकर खड़ी हो गई! उस के सिर पर कोई आवरण नहीं था। उस के सिर के कोमल, सुनहले बाल, अस्तव्यस्त होकर इधर-उधर बिखरे हुए थे।

क्रोपेट के शरीरभर में बिजली-सी घूम गई। बड़ी शीघ्रता से उस ने अपना पिस्तौल जेब में डाल लिया। वह एकटक निर्निमेष दृष्टि से रोज़ेलिन की तरफ़ देखने लगा। रोज़ेलिन की निगाह अभी तक क्रोपेट पर नहीं पड़ी थी, इस पर भी क्रोपेट न तो उसे बुला ही सका और न वहाँ से हिल ही सका।

बरसों के बाद अपने दिन-रात की मधुर-स्मृति—क्रोपेट को, इतनी रात बीत जाने पर, अचानक अपने ही शयनागार के किनारे खड़ा हुआ देख कर, पहले तो रोज़ेलिन अपनी आँखों पर विश्वास ही न कर सकी। इस के बाद वह उन्मत्त की तरह क्रोपेट की तरफ़ बढ़ी। उस ने पुकारा—"प्रियतम क्रोपेट!"

रोजेलिन को अपने इतना निकट पाकर पहले तो क्रोपेट दो-

एक कदम पीछे हट गया, इस के बाद आगे बढ़कर उस ने रोज़े-लिन का हाथ पकड़ लिया।

बरसों से खोई हुई अपनी निधि पाकर रोज़ेलिन उन्मत्त हो उठी। क्रोपेट की आँखों में अपनी आँखें गढ़ाए रखकर उस ने लड़खड़ाती हुई आवाज़ में पूछा—"क्रोपेट! यह क्या?"

क्रोपेट कोई जवाब नहीं दे सका। रोज़ेलिन का कोमल हाथ ऊपर उठा कर, उसे बड़े स्नेह से चूमते हुए, उस ने जल्दी-जल्दी केवल इतना ही कहा—"प्राणप्यारी रोज़! विदा! सदा के लिए विदा!"

इतना कहते ही क्रोपेट रोज़ का हाथ छोड़ कर बाहर की तरफ़ भाग खड़ा हुआ। रोज़ेलिन और भी अधिक अचम्भे में आ गई। क्रोपेट के पीछे-पीछे शीघ्रता से बँगले के बाहर आकर उस ने ऊँचे स्वर में पुकारा—"क्रोपेट! प्रियतम क्रोपेट!"

परन्तु रोज़ेलिन की चीखती हुई करुण पुकारों का किसी ने उत्तर नहीं दिया। उसे केवल इतना ही दिखाई दिया कि चांदनी से ढके हुए बग़ीचे में से होकर क्रोपेट फाटक की तरफ़ भागा जा रहा है।

बेचरी रोज़ेलिन समझ नहीं सकी कि यह मामला क्या है। वह बड़ी निराशा और दुख से दूर पर भागी जा रही, क्रोपेट की उस अस्पष्ट मूर्त्ति की ओर देखने लगी। इसी समय उसे अपने फाटक पर से पिस्तौल छूटने की ऊँची आवाज़ सुनाई दी। रोज़ बिलकुल घबरा गई। वह भयभीत होकर चिल्लाई—"पापा! पापा!"

बंगले में से श्वेत दाढ़ीवाली एक भव्य मूर्त्ति बाहर निकली। रोज़ेलिन के कन्धों पर अपना शुभ्र हाथ रख कर उस ने पूछा—"रोज़! क्या है?"

रोज़ अधीर होकर रोने लगी। उस ने कोई जवाब नहीं दिया।

इस समय तक पिस्तौल छूटने की आवाज़ सुन कर मो० लीमैन के बहुत से नौकर भी वहां पहुँच गए थे। लैम्प लेकर वे फाटक के आसपास का स्थान ढूँढ़ने लगे। परन्तु दो-एक खाली कार्तूसों के अतिरिक्त वे वहां से कुछ भी पा नहीं सके।

रोज़ेलिन, अभागी रोज़ेलिन, अपने वृद्ध पिता का हाथ पकड़े हुए अन्दर चली गई।

(८)

रूसी क्रान्तिकारी दल भयंकर था। उस के कारनामें और भी अधिक भयंकर थे, परन्तु उस का कोर्ट मार्शल सब से अधिक भयंकर था। आज दल के इसी मार्शल कोर्ट के सम्मुख अभियुक्त के स्थान पर स्वयं क्रोपेट उपस्थित था। उस के दोनों हाथ पीछे की तरफ़ बँधे हुए थे। उस का सिर लाल रूमाल से लपेट दिया गया था। मुख्य न्यायाधीश के स्थान पर सरपञ्च बैठा था और जूरी के स्थान पर अन्य सब नायक।

यह अभियोग भी एक विचित्र अभियोग था। न्यायाधीश और जूरी सब एक स्वर से अभियुक्त को निरपराध बता रहे थे—परन्तु अभियुक्त अपने को अपराधी कहता था। बहुत देर के वाद-विवाद के बाद स्वयं क्रोपेट ने ही संघ के मुखियाओं को, इस

प्रकार कोर्ट मार्शल की प्रथा पूरी करने के लिए बाधित किया था।

मार्शल कोर्ट में पूरा मातम छाया हुआ था। अभियोग तो कुछ था ही। जज और जूरी सब अभियुक्त के हाथ की कठपुतली बने हुए थे। वह जैसा कहता था—सब लोग बाधित होकर वही करते थे।

अन्त में अभियुक्त ने न्यायाधीश को आदेश दिया—"मैंने अवसर पाकर भी संघ की आज्ञा का पालन नहीं किया। संघ का पवित्र नियन्त्रण मैंने जान-बूझ कर तोड़ा है, अतः मुझे प्राण-दण्ड दीजिए। मैं तैयार हूँ।"

सरपञ्च कुछ नहीं बोला। वह आंखों पर रूमाल रख कर न जाने क्या सोच रहा था। थोड़ी देर के बाद, इस सन्नाटे को तोड़ते हुए, धीरे-धीरे सरपञ्च ने केवल इतना ही कहा—"क्रोपेट! उस दिन तुम्हें संघ में प्रविष्ट करते हुए, यदि मैं तुम्हारे साथ वह रियायत करने की भूल न करता तो शायद आज यह बुरा दिन न देखना पड़ता। इस लिए अभियुक्त के साथ ही साथ मैं भी अपने को अपराधी घोषित करता हूँ।"

अगले ही क्षण दो बार पिस्तौल छूटने की भयङ्कर आवाज़ हुई। क्रोपेट और सरपञ्च दोनों की वीर आत्माएँ एक साथ स्वर्ग की ओर कूच कर गईं। सरपञ्च ने क्रोपेट का अपराध और अपनी भूल—दोनों का एक साथ प्रायश्चित्त कर लिया।

रेलगाड़ी में—

दिन को रेल का सफ़र करने से मैं सदैव बचने का प्रयत्न करता हूँ। मगर बादलों वाले दिन मेरी इच्छा होती है कि रेल के डिब्बे की पूरी खिड़कियां खोल कर मैं एक जगह से दूसरी जगह पर उड़ा फिरूँ! सरदी हो या गरमी, बादलों का आना मुझे सदैव पसन्द है। ऐसे दिन मुझे यही अनुभव होता है, जैसे धरती के इस खुले आंगन में कोई उत्सव करने के लिए भगवान ने बादलों का शामियाना तान दिया हो। वास्तव में सूर्य का प्रकाश क्रियाशीलता का प्रतिनिधि है और बादल कविता के प्रतिनिधि। सूर्य पुरुष है, बादल स्त्री। यहां तक कि रेगिस्तान पर भी जब बादलों

का यह सुहावना चंदुआ तन जाता है तो वहां शान्ति और मधुरता छा जाती है।

एक ऐसे ही दिन मैं रेलगाड़ी में सवार होकर प्रकृति-निरीक्षण का आनन्द ले रहा था। गाड़ी जब स—— स्टेशन पर पहुँची, तो एक महाशय मेरे डिब्बे में आविराजे। गाड़ी चलने तक तो वह प्लेटफ़ार्म के दृश्य देखने में ही व्यस्त रहे, इस लिए उन का ध्यान मेरी ओर नहीं गया। गाड़ी चलने पर भी वह खिड़की से मुंह बाहर निकाल कर प्लेटफार्म पर आ-जा रहे लोगों की तरफ़ देख रहे थे। परन्तु ज्यों ही गाड़ी निर्जन स्थान पर पहुंच कर कुछ तेज़ हुई, वह "नमस्ते महाराज" करके मेरे सामने की सीट पर आ बैठे। इन महाशय ने मुझ से जो नीरस और एकदम व्यर्थ बात-चीत शुरू की, मुझे अनुभव हुआ कि, उस के कारण मेरी आज की यह मनोहर यात्रा बिलकुल व्यर्थ हो जायगी। यह महाशय दिल्ली जा रहे थे, इस लिए अगले ही स्टेशन पर उन्हीं के भरोसे अपना सामान छोड़ कर मैं तीसरे दर्जे के एक बिलकुल खाली छोटे-से डिब्बे में अकेला जा बैठा।

यह गाड़ी उन मामूली पैंसजर गाड़ियों में थी, जो हर एक स्टेशन पर दिल खोल कर आराम किया करती हैं। मैं अपने डिब्बे की सब खिड़कियां खोल कर बाहर की तरफ़ देख रहा था। सरदियों का मौसम था। रेलवे लाइन के दोनों तरफ़ मीलों तक फैले हुए खेतों में गेंहूँ की नई-नई कोपलें चुपचाप सन्नाटा थाम कर आसमान से पानी का इन्तज़ार कर रही थीं। दूर पर, जगह-जगह दिखाई

देने वाले घने-घने आम्रकुंजों में अत्यधिक स्निग्ध श्यामलता दृष्टिगोचर हो रही थी। बादलों की घनी छाया में ये आम्रकुंज ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे मुद्दत तक सूरज के खुले प्रकाश में सफ़र कर लेने के बाद आज अपने घर में बैठे हुए विश्राम कर रहे हों।

थोड़ी ही देर में वर्षा का एक झोंका आया। ठण्ड बढ़ गई। अपना चैस्टर टांगों पर डाल कर मैं खिड़की की राह बाहर देखने लगा— वर्षा की फुआर के साथ-साथ सफ़ेद कोहरे की उत्पत्ति हो रही है। सब ओर बिलकुल सन्नाटा है। कहीं कोई प्राणी दिखाई नहीं देता। केवल कहीं-कहीं, घने आम्रकुञ्जों की छाया में, सरदी के कारण एक-दूसरे के अत्यधिक निकट होकर खड़े हुए गाय-बैल दिखाई दे जाते हैं। जहां तक नज़र जाती है वहां तक, आसमान से गीलापन, शीतलता, स्निग्धता और सन्नाटा मूर्त्तिमान होकर बरसता-सा दिखाई देता है। इन परिस्थितियों में अपने निश्चित मार्ग पर शीघ्रता से भागी-जा-रही रेलगाड़ी की 'धक्–धक्' आवाज़ बहुत भली प्रतीत होती है।

कई घण्टे बीत गए, प्रकृति ने अपना यह दिव्यरूप नहीं बदला। मेरे डिब्बे में कोई यात्री नहीं आया। क्रमशः गाड़ी मे— छावनी स्टेशन पर पहुँची। इस स्टेशन पर एक किसान-दम्पति मेरे डिब्बे में सवार होगए। मेरा एकान्त जाता रहा, इस लिए जब गाड़ी चली तो मैं ने निश्चय किया कि अगले स्टेशन पर पुनः अपने डिब्बे में चला जाऊँगा। परन्तु उस स्टेशन पर एक महिला आकर इसी डिब्बे में सवार हुई। शकल-सूरत और पहिनावे से

यह औरत खानसामा-जमात की प्रतीत होती थी। उस की उम्र चालीस बरस से छोटी न होगी। उस के सांवले रंग के चेहरे पर इतनी असाधारण गम्भीरता थी कि मेरा ध्यान अनायास ही उस की तरफ़ आकृष्ट हो गया। दो-एक अन्य किसान भी आकर इस डिब्बे में सवार हो गए। कुली ने उस औरत का सामान यथा-स्थान रख दिया और कुली को पैसे देकर वह खिड़की की राह गाड़ी में-से अपना मुँह बाहर निकाल कर प्लेटफ़ार्म की तरफ़ देखने लगी। उस की दृष्टि में कुछ ऐसी व्यग्रता थी कि कौतूहलवश मैं अपनी जगह पर ही बैठा रह गया। समय अपनी साधारण चाल से बीत रहा था; मगर शायद उस महिला के लिए तब एक-एक क्षण की भी बहुत कीमत थी; इस लिए ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता था, उस के हृदय की व्यग्रता बढ़ती जाती थी और क्रमशः उस के चेहरे पर उदासी और निराशा के भाव आते जा रहे थे। एञ्जिन पानी लेने के लिए गाड़ी से कट कर थोड़ी दूर पर गया हुआ था। क्रमशः वह लौटा और गाड़ी से संयुक्त हो गया। उस का हल्का-सा धक्का हम लोगों को स्पष्टरूप में अनुभव हुआ। इस डिब्बे से ऐञ्जिन बहुत दूर नहीं था। पानी पीकर जैसे उस में नवजीवन का संचार हो गया; उस की हिस्-स्-स्-स् की आवाज़ बढ़ गई, मानों अब वह भाग चलने के लिए व्याकुल होरहा हो। शीघ्र ही एञ्जिन ने एक सीटी दी। वह महिला बिलकुल निराश होगई; उस ने हठात् एक गहरा श्वास लिया परन्तु अगले ही क्षण उस का चेहरा खिल उठा, आंखों में प्रसन्नता छा

गई और अपना हाथ बाहर निकाल कर, इस तरह से, जैसे स्टेशन-भर के अन्य सब लोग निर्जीव हों और उस की इन असाधारण हरकतों को देख ही न रहे हों, वह दूर पर के किसी व्यक्ति को अपनी तरफ़ आने के लिए इशारे करने लगी। मेरा ध्यान तो शुरू ही से इसी महिला की तरफ़ था। अब उस के चेहरे का यह भाव-परिवर्तन देख कर मैं ने बाहर की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। देखा, स्टेशन की सीमा के बाहर ख़ानसामों की-सी पोशाक पहिने हुए एक युवक घोड़े से उतरा है, और वह स्टेशन के प्लेटफ़ार्म के एक सिरे से, शीघ्रतापूर्वक इसी तरफ़ बढ़ा चला आ रहा है।

एञ्जिन ने अभी दूसरी सीटी नहीं दी थी कि वह युवक उस महिला के पास आखड़ा हुआ। वह महिला कूद कर गाड़ी से नीचे उतर गई। ख़ानसामा ने इस महिला को सिर झुका कर नमस्कार किया और महिला ने उस का हाथ उठा कर उस का एक चुम्बन लिया। स्टेशन-भर के अनेक आदमी इन दोनों की तरफ़ देख कर मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे। मैं ने देखा कि उस नवयुवक को लोगों की खुली दृष्टि से कुछ लज्जा-सी अनुभव हो रही है। मगर वह महिला इतनी तन्मय थी कि उसे किसी और बात का ध्यान ही नहीं था।

कुछ क्षणों तक वह महिला अपना एक हाथ उस के सिर पर रख कर और दूसरे हाथ में उस का बायां हाथ थाम कर चुपचाप खड़ी रही। वह इतने भावावेश में थी कि उस के लिए कुछ बोल सकना सम्भव ही नहीं था। इस के बाद उस ने बड़े प्रयत्नपूर्वक कहा —"मैं दो घण्टों से तुम्हारी इन्तज़ार में थी। तुम पहले क्यों

नहीं आए ?"

वह नवयुवक विस्तारपूर्वक अपनी देरी का कारण बताने ही लगा था कि एञ्जिन ने दूसरी सीटी दी। महिला ने इस नवयुवक को खींच कर अपनी छाती से लगा लिया।

इस के बाद उन दोनों में बहुत धीरे-धीरे क्या बातचीत हुई, इसे मैं सुन नहीं सका। उन के पास समय ही बहुत थोड़ा था। अगले ही क्षण गार्ड ने भी सीटी दी। एञ्जिन ने इस वार जो सीटी दी, वह महज़ धमकी नहीं थी—वह चल देने की इच्छा से दी गई थी। खानसामा की मदद से वह महिला गाड़ी में सवार होगई। गाड़ी चल दी। जब तक गाड़ी की चाल धीमी रही, वह युवक भी साथ-साथ ही चलता रहा। जब गाड़ी की रफ़्तार तेज़ होगई, तो वह एक स्थान पर खड़ा होकर इस महिला की तरफ़ देखने लगा। यह महिला खिड़की में से अपना मुँह बाहर निकाल कर उस युवक को लक्ष्य करके रूमाल हिलाती रही। क्रमशः एक क्षण आया, जब वे दोनों एक दूसरे से अदृश्य हो गए।

उस महिला की आंखों में आंसू भर आए। उस ने एक श्वास लिया और वह एक तरफ़ को होकर बैठ गई। अपना रूमाल अब उस ने अपनी आंखों पर रख लिया था। उस के रोने का वेग बढ़ गया। अपने रोने के वेग को अन्दर ही अन्दर दबा देने के लिए वह जो प्रयत्न करती थी, उस की आवाज़ भी अब साफ़-साफ़ सुनाई दे रही थी। इस डिब्बे में जो किसान-पत्नी बैठी थी, वह सम्भवतः बड़े नरम दिल की थी। वह उठी, और परदा कर

के इस शोक-सन्तप्त बड़ी उम्र की महिला को बहिन के समान आश्वासन देने लगी। क्रमशः उस के रोने का वेग शान्त होगया। शीघ्र ही दोनों स्त्रियों में बातचीत होने लगी और इस बातचीत का प्रवाह धीरे-धीरे इस तरह खुल गया, जैसे वेगवती पानी की धारा राह की मिट्टी को काट कर अपने लिए खुला मार्ग बना लेती है।

मेरी निगाह अब भी खिड़की की राह से बाहर के प्राकृतिक सौन्दर्य पर पड़ रही थी, मगर मैं देख कुछ नहीं रहा था! मैं सुन रहा था; सुन क्या रहा था, सुनने का प्रयत्न कर रहा था कि उन दोनों स्त्रियों में क्या बातचीत चल रही है।

मगर बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं कुछ न जान सका कि उन दोनों में क्या बात हो रही है। क्रमशः अपने अनजान में ही मैं किसी नई-सी दुनियां में जा पहुँचा। वह दुनियां, जिस से लौट कर ही उस की अयथार्थता प्रत्यक्ष के समान अनुभव होती है; परन्तु उस में रहते हुए, वह इतनी ही यथार्थ प्रतीत होती है, जैसी कि यह जागृत दशा की ठोस-दुनिया।

× × ×

मेरे दिल में अब भी यह उत्सुकता उतनी ही तीव्रता से बनी हुई थी कि उस अधेड़ औरत के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करूँ। इस नई दुनियां में पहुँच कर मेरे लिए उस नारी का पूर्व-वृत्तान्त जान लेना कुछ भी कठिन नहीं रहा। मैं देखने लगा—

एक लड़की थी। उस का नाम सुक्खी था। उस का जन्म एक मछिहारे के घर हुआ था। यमुना नदी के किनारे, आबादी से

अलग, उस के बाप की एक ज़रा-सी झोंपड़ी थी। बाप दिनभर मछलियां फँसाया करता था। वह ग़रीब आदमी था, इसलिए बिलकुल घटिया दर्जे के जाल ही वह इस्तेमाल में ला सकता था। जमुना के बड़े-बड़े कछुए उस के सब से भयंकर शत्रु थे। जब कोई बड़ी मछली उस के जाल में फँसती, तो झट-से कोई न कोई कछुआ वहां आ पहुँचता। वह न केवल उस मछली को ही खा जाता, अपितु उस ग़रीब के जाल को भी जगह-जगह से छेद डालता। नतीजा यह होता कि वह बेचारा दिनभर में बहुत थोड़ी मछलियों का शिकार कर पाता था। वह बिलकुल ग़रीब था। न उस के पास काफ़ी कपड़े थे और न अच्छा भोजन। सुक्खी की एक बड़ी बहिन थी, एक उस से भी बड़ा भाई। उस का बाप अपनी तीनों सन्तानों और उन की माता का बड़ी कठिनता से गुज़ारा चलता था। मां दिनभर चरखा कातती, जालों की मरम्मत करती और घर के अन्य कामकाज भी निबटाती। तीनों बच्चे जंगल से लकड़ियां जमा कर लाते और उथले जल में छोटी-छोटी मछलियों को पकड़ने का काम किया करते थे। उन के तन पर लंगोट को छोड़ कर कोई कपड़ा नहीं था। सुक्खी का बाप सांझ के समय अपनी दिनभर की मेहनत को सिर पर लाद कर तीन मील दूर के गांव में जाता, और बहुत सस्ते दामों पर अपना यह शिकार बेच कर वापस लौट आता था। यह गांव एक अच्छा-खासा कसबा था, इस लिए मांछहारे को अपने शिकार का गाहक मिलने में बहुत देर नहीं लगती थी।

मछिहारे की झोंपड़ी के सामने एक बहुत वीरान-सा जंगल था। जंगल क्या था, कटी-फटी वंजर-सी भूमि पर छोटे-छोटे पेड़ उग आए थे। इस जंगल में गांव के चरवाहे जानवरों को चराने के लिए आया करते थे। सुक्खी की दुनियां इन चरवाहों तक ही सीमित थी। तीन मील दूर के उस गांव के बाद इस पृथवी पर क्या है? कुछ है भी या नहीं?—इस सम्बन्ध में सुक्खी और उस के भाई-बहिन कुछ भी नहीं जानते थे। उन्हें जानने की इच्छा ही न होती थी। उन की सब से बड़ी मिठाई बाजरे की गुड़ मिली रोटी थी। गुड़ से अच्छा भी दुनियां में कोई भोज्य पदार्थ हो सकता है—इस परिवार के सभी बालकों के लिए यह बात कल्पना से भी परे थी। जंगल के कसैले बेरों और खट्टे-मीठे जामुनों के इलावा एक ही और फल का नाम उन्हें ज्ञात था। मगर उन की दृष्टि में यह देव-दुर्लभ फल, उन्हें सालभर में केवल पांच-सात वार ही खाने को मिलता था। उन का बाप बरसात की मौसम में, कभी-कभी गांव से लौटते हुए दो-तीन पैसों के चालीस-पचास गले-सड़े और छोटे-छोटे आम उठा लाया करता था। जिस दिन उन के घर में यह चीज़ आती, उस दिन वहां नवजीवन का संचार होजाता था। बच्चों के चेहरों पर एक विशेष तरह की प्रसन्नता और उत्साह दिखाई देने लगता था। सुक्खी के बचपन के दिन इसी प्रकार की परिस्थितियों में व्यतीत हुए थे।

क्रमशः दिनों के महीने बनते गए और महीनों के साल। ये साल भी कई निकल गए। धीरे-धीरे सुक्खी का बड़ा भाई भी

अपने बाप की तरह बाकायदा मछिहारे का काम करने लगा, और उस की बड़ी बहिन का विवाह होगया। उस की उम्र अब १२ बरस की हो चुकी थी। मछिहारा अपनी इस लड़की की खुश-किस्मती पर फूला न समाता था। वह सोचता—'सारी बात किस्मत की है। जब किसी की किस्मत अच्छी होती है तो उस का भला होकर ही रहता है। तभी तो !—हां तभी तो मुझ बेचारे मछिहारे की ग़रीब-सी लड़की का विवाह एक धोबी से हो गया है।' सुक्खी के 'जीजा जी' सचमुच के एक धोबी थे। इस धोबी की उम्र २६ साल से कम नहीं होगी। कामकाज की दृष्टि से यह धोबी बिलकुल निकम्मा नहीं था, परन्तु अपनी जात-बिरादरी में कोई झगड़ा हो जाने के कारण कोई व्यक्ति उसे अपनी लड़की देने को तैयार नहीं होता था। इसी कारण अब तक उस का विवाह नहीं होसका था। ग़रीब मछिहारे के घर जब धोबियों की बरात आई, तो सुक्खी और उस के भाई-बहिन उन के वैभव को देख कर दंग रह गए। वैसे, बरात कोई बड़ी नहीं थी, सिर्फ़ उस धोबी के कुछ निकट-सम्बन्धी ही इस बरात में शामिल हुए थे। इन धोबियों ने जो नील-चढ़े उजले वस्त्र पहिने हुए थे, उन्हें देख कर यह मछिहारा-परिवार इतना आश्चर्य-चकित हो रहा था कि उन्हें यह भी समझ नहीं आता था कि बरातियों की ये पोशाकें कपड़े की बनी हुई हैं या और किसी चीज़ की। .खैर, मतलब यह कि सुक्खी की बहिन बड़ी भाग्यशालिनी थी कि उस का विवाह एक धोबी से होगया।

मगर उस अभागे मछिहारे को यह खुशी देखना बहुत देर

तक नसीब नहीं हुआ। इस विवाह के केवल दो मास बाद ही नवम्बर महीने की एक सायंकाल जब वह गांव से वापस लौट कर घर पहुँचा तो उसे सरदी अनुभव होने लगी। वह बिना कुछ खाए-पीए अपने बिस्तरे पर जाकर लेट गया। उस की सारी रात बड़ी बेचैनी से कटी। जब प्रातःकाल हुआ, तो उस की तकलीफ़ बहुत बढ़ गई। तेज़ बुख़ार के साथ-साथ उसे बड़ी बेचैनी अनुभव होने लगी। दिनभर वह चारपाई पर पड़े-पड़े कराहता रहा। सुक्खी की मां किसी बीमारी के सम्बन्ध में तो कुछ जानती ही न थी, वह अपने पति को किसी जंगली वनस्पति का गरम-गरम काढ़ा ही पिलाती रही। सांझ तक उस बेचारे को छाती में भी दर्द अनुभव होने लगा। सारी रात जागते ही गुज़री। सुक्खी की बड़ी बहिन अपने पति के घर थी। दूसरे दिन सुक्खी का भाई अपने बहिनोई और बहिन को लेने के लिए गांव चला गया। परन्तु उस के लौटने से पहले ही अभागे मछिहारे का देहान्त हो चुका था।

सुक्खी और उस की मां पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा। इस अवसर पर उस के जीजा जी सचमुच काम आए। वह धोबी सुक्खी और उस की मां को अपने घर ले गया और वहां उस ने उन्हें करीब एक मास तक काफ़ी सुख से रक्खा। इस के बाद वे दोनों अपनी झोंपड़ी में लौट आए और सुक्खी का भाई मछिहारे का काम करके अपनी मां और बहिन का पालन करने लगा।

अभागे मछिहारे की अनाथ लड़की सुक्खी को इस दस वर्ष की उम्र में ही एक तरह से अपनी आजीविका स्वयं कमानी पड़ती

है। वह प्रतिदिन जंगल से सूखी लकड़ियां बटोर कर लाती है। सायंकाल के समय जब उस का भाई मछलियां बेचने के लिए गांव में जाता है तो सुक्खी की बटोरी हुई लकड़ियों का गट्ठा भी अपने सिर पर लाद ले जाता है। सुक्खी का भाई एक तो वैसे ही चतुर मछिहारा नहीं, इस पर उस के जालों की दशा और भी अधिक बिगड़ गई है, इस लिए सुक्खी की यह मेहनत इस ग़रीब परिवार के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। कभी-कभी तो उस के जाल में एक भी मछली नहीं फँसती; ऐसे दिन वह सिर्फ़ लकड़ियों का गट्ठा ही बेच कर दो-चार पैसे बटोर लाता है।

× × ×

एक दिन की बात है। सुक्खी दोपहर के समय जंगल में से लकड़ियां तोड़ रही थी। गरमियों के दिन थे। नदी का पानी बिलकुल उतरा हुआ था। दोपहर का समय था। काफ़ी गरमी पड़ रही थी। नदी के किनारे घनी छाया वाले जामुन के अनेक वृक्ष लगे हुए थे। इन वृक्षों पर, छोटी-छोटी अधपकी जामुनें लदी हुई थीं। इन के नीचे किसी चरवाहे के जानवर आराम कर रहे थे।

चारों तरफ़ सन्नाटा था। हवा बहुत ही धीमी होकर चल रही थी। जामुनों के नीचे बैठी हुई अधिकांश गौएँ मस्त होकर, आंखें बन्द किए हुए जुगाली कर रही थीं। भैंसें नदी के उथले पानी में बैठी थीं। उन के गले की घण्टियां हिल-हिल कर बीच-बीच में इस सन्नाटे को भंग करने का विफल प्रयत्न करती थीं। दूर पर, तीन-चार चरवाहे मिल कर कोई गीत गा रहे थे, जिस की अस्पष्ट-सी

आवाज़ सुक्खी के कानों में पड़ रही थी। लकड़ियां जमा करते-करते सुक्खी थक गई। उस के जी में आया कि चल कर जामुनों की छाया में कुछ देर तक आराम करूँ। इस समय तक लकड़ियों का करीब आधा गट्ठर ही जमा हो पाया था। सुक्खी ने इस गट्ठर को बांधा और वह नदीतट पर लगे इन जामुनों के नीचे पहुँच गई। उस ने अपनी लकड़ियां एक तरफ़ को रख दीं और बड़ी लालायित दृष्टि से इन अधपके जामुनों की तरफ़ देखने लगी। उसे दिखाई दिया कि जामुन कुछ-कुछ पक गए हैं। उस के जी में आया कि इन्हें तोड़ कर खाऊँ। मगर पेड़ों के तने सीधे और लम्बे थे। सुक्खी के लिए उन पर चढ़ सकना असम्भव था। अनेक वृक्षों की शाखाएँ फलों के बोझ से नीचे की तरफ़ लटक रही थीं; मगर इस तरह की अधिकांश शाखाएँ पानी के ऊपर ही थीं। बेचारी सुक्खी कुछ देर तक बड़े सकामभाव से इन जामुनों की तरफ़ देखती रही। इस के बाद उस ने एक पत्थर उठा लिया और उसे वृक्ष की घनी डालों पर ज़ोर के साथ मारा। पत्थर की चोट से चार-पांच जामुनें नीचे गिरीं, मगर इन में से अधिकांश कच्ची ही थीं। सुक्खी ने वही पत्थर उठा कर, अब के और भी अधिक बल से ऊपर की तरफ़ उछाला। इस पत्थर की चोट से कुछ जामुनें भी गिरीं या नहीं, यह तो नहीं मालूम, परन्तु वायुमण्डल में एक साथ सैकड़ों शहद की मक्खियां ज़रूर व्याप्त होगईं। सुक्खी का अभागा पत्थर मक्खियों के छत्ते पर ही जा लगा था। सुक्खी यह देख कर घबरा गई। वह भागी, परन्तु फिर भी एक मक्खी उस के नंगे कंधे पर

आकर काट ही गई। इधर गौओं में हलचल पड़ गई थी। मक्खियों ने अनेक गौओं पर आक्रमण किया था, इस लिए वे भी उठ-उठ कर भागने लगीं। यह देख कर एक चरवाहा दौड़ा हुआ इस तरफ़ आया। डर कर भागी-जा-रही सुक्खी पर नज़र पड़ते ही उसे सारी घटना समझ आगई। उस ने दौड़ कर सुक्खी को पकड़ लिया। मक्खी काट खाने के दर्द से बेचारी सुक्खी पहले ही तिल-मिला रही थी, उस पर क्रोध में भरे हुए चरवाहे ने उसे दो-तीन थप्पड़ और रसीद कर दिए। सुक्खी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

चरवाहा उसे पकड़ कर पुनः जामुनों के तले ले आया। इस समय तक मक्खियों का उपद्रव लगभग शान्त हो चुका था। चरवाहा जानता था कि सुक्खी प्रतिदिन इसी जंगल में लकड़ियां जमा करने का काम करती है। जामुनों के नीचे पहुँचकर लकड़ियों के गट्ठर पर भी उसकी निगाह पड़ी। उस का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। उस ने वह गट्ठर उठाया और उसे ज़ोर से नदी में फेंक दिया।

बेचारी सुक्खी पर इस से बड़ा अत्याचार और नहीं हो सकता था। इस चरवाहे ने न केवल उस के आधे दिन की मेहनत ही बेकार कर दी, अपितु उस की रस्सी भी पानी में बहा दी। वह अभागी चिल्ला-चिल्ला कर ज़मीन-आसमान एक करने लगी। उस की आँखों से आँसुओं का सोता बह चला। कितने उल्लास से वह बेचारी जामुनें तोड़ने आई थी! यहां आकर पहले तो उसे मक्खी ने काटा, उस के बाद चरवाहे से मार पड़ी और अब

उस की कीमती रस्सी तक भी पानी में बहा दी गई। वह बेचारी ज़मीन पर लोट-लोट कर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

एक मिनट तक तो वह चरवाहा इस छोटी-सी, अभागिनी लड़की का यह करुण-क्रन्दन चुपचाप खड़े रह कर सुनता रहा। परन्तु इस के बाद उस का जी पसीज गया। सुक्खी से एक भी शब्द बोले बिना वह पानी में कूद गया और उस का वह गट्ठर खींच कर बाहर ले आया। सुक्खी इस समय तक भी उसी तरह रो रही थी कि चरवाहा उस के पास आया और गट्ठर उस के सामने रख कर बोला—"अब बता! फिर कभी ऐसा करेगी?"

चरवाहे ने यह बात कही तो धमकी के ढंग पर थी, मगर अब उस के स्वर में तीव्रता ज़रा भी नहीं रही थी। सुक्खी ने उस की इस धमकी का कोई जवाब नहीं दिया। केवल उस के आंसुओं का प्रवाह और भी अधिक तेज़ होगया।

चरवाहा अब सुक्खी के एकदम निकट चला आया। उस ने सुक्खी के कन्धे पर हाथ रख कर, अब भी डांटती हुई-सी स्वर में कहा—"नालायक कहीं की! रोती जाती है और बोलती नहीं। देख, तेरा कन्धा सूज आया है। तुझे भी मक्खी ने काटा है न?—और कर शरारतें! चल, इस पर गीली मिट्टी लगा ले।"

सुक्खी ने अब भी कोई जवाब नहीं दिया, और न वह अपने स्थान से हिली ही। उस की रोने की आवाज़ तो अब धीमी पड़ गई थी, मगर उस की द्रावकता अब पहले की अपेक्षा भी बढ़ गई थी।

चरवाहा एक मिनट तक चुपचाप खड़ा रहा, और इस के बाद वह नदी के किनारे से गीली-गीली चिकनी मिट्टी उठा लाया। सुक्खी के कन्धे पर उस ने इस का लेप कर दिया। बालिका के जलते हुए अंग को गीली मिट्टी के स्पर्श से बड़ी शीतलता पहुँची।

तब वह चरवाहा उसे अपने साथ ले गया और अपनी टोली में पहुँच कर उस ने नमक-मिले काले-काले जामुनों से भरा एक बड़ा-सा दोना इस दरिद्र-सी, हतबुद्धि होरही, व्यथित बालिका के हाथों में पकड़ा दिया और कहा—"बस, अब चली जाओ !"

सुक्खी की उदास-सी आंखें चमक आईं और एक बार कृतज्ञताभरी और बिलकुल निष्पाप दृष्टि से उस हट्टे-कट्टे और तन्दरुस्त चरवाहे की ओर देख कर वह वहां से चली गई।

इस मामूली-सी घटना ने सुक्खी के दिल में प्रेम का वह पौदा उत्पन्न कर दिया, जो मनुष्य के हृदय की सब से बड़ी विभूति है।

उस दिन के बाद से जब वह उस चरवाहे को देखती, उस का दिल खुशी से नाचने लगता। चरवाहा भी उस से बड़ी प्रसन्नता के साथ मिलता था। सम्भवतः वह भी उस से स्नेह करने लगा था। परन्तु पुरुष और स्त्री के स्नेह में स्वभावतः ही बड़ा अन्तर होता है। क्या अन्तर होता है ?—इस की विवेचना न करना ही अधिक अच्छा है।

अनेक दिन इसी तरह निकल गए।

× × ×

उधर सुक्खी के जीजा जी के दिल में एक नई इच्छा उत्पन्न हुई। उस धोबी का एक छोटा भाई भी था। उस की उम्र अभी सोलह-सत्रह साल की ही थी। परन्तु धोबी को मालूम था कि विवाह के सम्बन्ध में उस की किस्मत मेरी अपेक्षा अधिक अनुकूल सिद्ध नहीं होगी। अपने अनुभव के आधार पर, अट्ठाइस बरस की उम्र तक कुआंरा रहने की दिक्कतों से अपने भाई को बचाने के लिए उस ने निश्चय कर लिया कि वह सुक्खी का विवाह उस से कर देने का प्रयत्न करेगा। घर में एक महिला सदस्य के और बढ़ जाने से धोबी को अपने कामकाज में स्वभावतः अधिक सहूलियत हो ही जाती थी। सुक्खी इस घर में आजाय, तो कम से कम इस्त्री में कोइला भरने, चिलम में तम्बाकू डालने और सूखते हुए कपड़ों की हिफ़ाज़त आदि का काम तो वह कर ही सकेगी। इस लिए एक रात को, सोने से पूर्व उस ने अपनी पत्नी के सामने यह प्रस्ताव पेश कर ही दिया।

परन्तु उस की पत्नी को इस घर का जो अनुभव हुआ था, उस की बदौलत अपनी बहिन को भी यहां ही खपा लेने की चरचा में उस ने कोई उत्साह नहीं अनुभव किया। मगर अपने पति के भय से वह इन्कार भी नहीं कर सकी। यह मामला, अगले दिन के लिए मुल्तवी कर दिया गया।

शीघ्र ही यह प्रस्ताव सुक्खी की मां के सामने भी आया। सुक्खी की मां को अपनी बड़ी लड़की के दिल की बात मालूम थी, इस लिए अपनी दूसरी लड़की को वह उसी घर में

स्वयं ही नहीं देना चाहती थी। फिर सुक्खी के चले जाने से वह यहां रह भी तो बिलकुल अकेली ही जाती। तो भी इस सम्बन्ध में उसने सुक्खी की राय जाननी चाही। बेचारी सुक्खी ने ज्यों ही इस प्रस्ताव को सुना, वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। उस की माता को उस चरवाहे के सम्बन्ध में तो कुछ भी ज्ञात नहीं था, तथापि वह इतना अवश्य समझ गई कि सुक्खी इस प्रस्ताव के लिए तैयार नहीं है।

परन्तु कम्बख़्त धोबी इतना कच्चा नहीं था। वह अपने मुकाबले में इस अनाथ-परिवार की कुछ भी हस्ती नहीं समझता था। वह उस वक़्त तो चुप रह गया; मगर अन्दर-ही-अन्दर अपने इस विचार को चरितार्थ कर लेने का उस ने पक्का निश्चय कर लिया।

करीब एक मास तक धोबी इस सम्बन्ध में दम साधे रहा। दोनों पक्षों के लोग धीरे-धीरे उस सम्बन्ध में सभी कुछ भूल गए। इस के बाद एक सुहावनी बदली वाले दिन वह धोबी नई-नई दूध-की-सी धुली पोशाक पहिन कर अपनी ससुराल में आ उपस्थित हुआ। उस की सास ने ठण्डेपन से उस का स्वागत किया। परन्तु दामाद ने जैसे इस शिथिल सत्कार की ओर ध्यान ही नहीं दिया। दो-एक दिन ससुराल ठहर कर उसने प्रस्ताव किया कि क्यों न सुक्खी की मां भी अपनी दोनों सन्तानों के साथ कुछ दिनों के लिए उसी के घर जाकर रहने लगे।

बरसात शुरू हो चुकी थी। जमुना नदी इन दिनों किनारों

तक भर कर बहा करती थी । जंगल में घासफूँस इस बहुतायत से उग आया था कि उस में प्रवेश करना भी अब कठिन होगया था। इस मछिहारा-परिवार की झोंपड़ी और गांव के बीच में जो छोटे-छोटे नाले बहते थे, वे इन दिनों प्रायः विकराल-रूप धारण कर लिया करते थे। इन नालों के अनिश्चित प्रवाह की बदौलत मछलियों की फरोख्त का धन्धा इस मौसम में और भी कम लाभकर होगया था। यही सब बाधाएँ देख कर सुक्खी की मां अपनी लड़की के घर जाकर कुछ दिन काट लेने के लिए तैयार होगई ।

सुक्खी जब अपनी जीजी के घर जाने लगी, तो उस के हृदय को पहली वार विरहजन्य वेदना का गम्भीर अनुभव हुआ। बरसात के कारण यद्यपि वह नौजवान चरवाहा अब इस ओर अपने पशुओं को चराने के लिए प्रतिदिन नहीं आया करता था, तथापि उस का इधर आना-जाना अब भी बना ही हुआ था। बरसात के इन सुहावने दिनों में यह चरवाहा-मण्डली बांसुरी का अनुपम उपयोग लिया करती थी। वंशी तो ग्वालों को विरासत में मिली है न। भोगपुर गांव के ये चरावाहे भी बंसी बजाने में बड़े निपुण थे । वह नौजवान चरवाहा इस दल का मुखिया था। जमुना के किनारे घने-घने जामुनों की वह लम्बी पंक्ति हरी-हरी जीवित दीवार के समान खड़ी थी। उन वृक्षों के साथ एक छोटा-सा समतल मैदान था, जो इस मौसम में हरे-हरे घास से मढ़-सा गया था। इन चरावाहों की टोली इसी मैदान में बैठ कर

बांसुरी बजाया करती थी। आसमान में बादल छाये होते थे, जामुनों के दूसरी तरफ़, जमुना नदी के जल की मटियाली-सी विस्तृत सतह लहरें लेकर फिसल रही होती थी। विस्तीर्ण नभ के किसी भाग में बिजली चमकती, उस के अगले ही क्षण में गम्भीर ध्वनि से बादल गरज उठता। उस के बाद मानों क्षणभर के लिए विश्व-भर सन्नाटा थाम लेता। परन्तु शीघ्र ही जंगल के मोर यह सन्नाटा तोड़ डालते, वे मिल कर बादलों के चैलेञ्ज का जवाब देते, मानों वे कहते हों—"हां, कहीं इस पृथवी को वीर विहीन मत समझ लेना। हम भी यहां रहते हैं!" इसके बाद कोयल कुहुकती, और अगले ही क्षण वह सम्पूर्ण श्यामल वन गीदड़ों की चिल्लाहटों से जैसे रोने लगता। इधर चरवाहों की यह महफ़िल बांसुरी बजाना शुरू करती—कभी एक-एक करके और कभी सब मिल कर। विचित्र समा बँध जाता, और दूर पर, किसी झाड़ी या गाय भैंस की ओट में बैठी हुई सुक्खी वंशी की इस तान को, आंखों में आनन्द के आंसू भर कर चुपचाप सुना करती। उस का असंस्कृत, अपरिपक्क और कोमल हृदय वंशी के राग के साथ ही साथ गति करने लगता था। अन्त में उस से रहा न जाता और वह व्याकुल हो कर धीरे-धीरे चरवाहों की उस टोली की तरफ़ चल देती। उसे आता देख कर उस नवयुवक चरवाहे की वंशी में उत्साह की बाढ़-सी आजाती और उस का राग बहुत अधिक स्फूर्तिमान हो उठता।

मगर अब लाचार होकर सुक्खी को अपने जीजा जी के घर के लिए रवाना होना ही पड़ा। अपनी बहिन के घर पहुँच कर वह

बहुत अधिक उदास रहने लगी। उस की माता का ख्याल था कि इस उदासी का कारण केवल उस के हृदय का यह भय है कि कहीं वह धोबी उस का विवाह अपने भाई से कर देने का प्रस्ताव फिर से न उठा दे। सुक्खी की मां ने निश्चय कर लिया था कि वह इस प्रस्ताव को कभी स्वीकार न करेगी।

सुक्खी को अपनी बहिन के घर आए कई दिन बीत गए। उस की बहिन उसे प्रसन्न रखने का बड़ा प्रयत्न करती थी। वह उस की उदासी का कारण भी जानना चाहती थी। प्रायः लड़कियां आपस में, अपनी समवयस्क बहनों या घनिष्ट सखियों के सामने, अपने दिल की बात नहीं छिपातीं। परन्तु सुक्खी की तबीयत कुछ और ही ढंग की थी। वह बहुत ही अवगुण्ठित और शर्मीले स्वभाव की लड़की थी। उसने अपनी बहिन के सामने भी अपने जी की बात कभी नहीं खोली।

एक दिन की बात है, सुक्खी सांझ के समय अपनी बहिन के साथ घाट पर बैठी थी। पास ही, मैदान की छोटी-छोटी घास पर दिनभर के धोये हुए कपड़े सूख रहे थे। सुक्खी के जीजा का यह घाट एक नाले के किनारे था। आज दिनभर आसमान में बादल रहे थे। थोड़ी-बहुत बूँदाबांदी भी होती रही थी, परन्तु इस वख़्त आसमान साफ़ हो चुका था और तेज़ धूप निकल आई थी। घाट पर इन दोनों बहिनोंको छोड़ कर और कोई नहीं था। इसी समय दूर से आवाज़ आई—"सुक्खी! अपनी जीजी के साथ ज़रा इधर तो आना!"

सुक्खी ने चौंक कर देखा, उस के जीजा जी उसे बुला रहे थे। उन के साथ उन का छोटा भाई भी था। सुक्खी घबरा गई। उस ने अपनी बहिन की तरफ़ देखा। उस की बहिन उस के मन की बात ताड़ गई। उस ने मुसकरा कर कहा—"इतना क्यों घबराती हो, वह तुम्हें खा तो नहीं जाएँगे। उस बात से तुम निश्चिन्त रहो, मैं वह कभी न होने दूँगी। चलो, देखें वे क्या कहते हैं।"

मगर सुक्खी की घबराहट अब भी दूर नहीं हुई। तो भी वह उठी और अपनी जीजी के साथ उस तरफ़ को चली। धोबी बहुत ही गम्भीर भाव से चुपचाप खड़ा था।

ज्यों ही ये दोनों बहिनें उस के निकट पहुँची, त्यों ही उस ने सुक्खी को पकड़ कर ज़बरदस्ती उस का आंचल अपने भाई के कुरते के साथ बांध दिया। इस के बाद दियासलाई निकाल कर बिजली की तेज़ी से उस ने पास की, सरकण्डों की झाड़ी को आग लगा दी। उस की पत्नी को चौंकने और विरोध करने का अवसर भी न मिला और वह धोबी सुक्खी और अपने भाई को ज़बरदस्ती बांध उस जलती झाड़ी के चारों ओर घुमाने लगा। सुक्खी ने रो-रोकर ज़मीन आसमान को एक करना शुरू कर दिया। वह उछल-उछलकर पूरे बल के साथ अपने को धोबी के फ़ौलादी पँजों से छुड़ाने का प्रयत्न कर रही थी, परन्तु उस के इन सब निर्बल प्रयत्नों को विफल करके धोबी ने उन दोनों को इस झाड़ी के चारों ओर तीन चक्कर लगवा ही दिए। इस के बाद उस ने उन्हें छोड़ दिया। इस बीच में सुक्खी की बहिन बहुत उत्तेजित होकर अपने

देवर को पीटने लग गई थी, इस लिए अब वह भी रो रहा था। सुक्खी तो रो ही रही थी। उस की बहिन भी रो रही थी। इस तरह इस पिशाच-विवाह की बरात के चारों जनों में उस नर-पशु धोबी को छोड़ कर बाकी तीनों रो रहे थे। सुक्खी अपने को छुड़वाने का जो हताश-प्रयत्न करती रही थी, उस की बदौलत उस का शरीर जगह-जगह से छिल गया था। अनेक स्थानों से खून बहने लगा था।

यह सब शोरगुल सुन कर सुक्खी की मां और उस का भाई भी दौड़े हुए उस जगह पहुँचे। उन तीनों का रोना अभी तक जारी था। सुक्खी की मां ने बहुत अधिक घबराकर धोबी से पूछा—"क्यों, क्या बात है ?"

उस ने हँसकर जवाब दिया—"कुछ नहीं। सुक्खी और बारू का विवाह हो गया है !"

सुक्खी की माता के मुँह पर हवाइयां उड़ने लगीं। उस ने लड़खड़ाती हुई आवाज़ में कहा—"यह कैसे हो सकता है !"

धोबी ने बड़ी साधारण स्वर में मुसकरा कर कहा—"कैसे हो सकता है ?—मैं ने इन दोनों का आंचल बांध कर इस आग के चारों ओर इन्हें तीन फेरे दे दिए हैं। अब देखते हैं कि कौन यह कह सकता है कि बारू और सुक्खी का विवाह नहीं हो गया !"

सुक्खी की मां ने क्रोध में भर कर कांपती हुई स्वर में कहा—"मैं यह विवाह हरगिज़ नहीं मानूँगी। मैं सुक्खी का विवाह कहीं और करूँगी। तुम बेशक अदालत की मदद ले आओ। मैं

उस की परवाह नहीं करूँगी।"

धोबी ने बड़ी उपेक्षा के साथ जवाब दिया—"उँह! अदालत में जाने की ज़रूरत ही क्या है? हिन्दू लड़की का ब्याह एक ही बार होता है। सुक्खी अब धरम से बारू की घरवाली बन चुकी। अब देखता हूँ, कौन हिन्दू तेरी इस लड़की के साथ विवाह करने को तैयार होता है!"

सुक्खी की मां ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह उसी समय सुक्खी और उस के भाई के साथ अपने घर की तरफ़ रवाना हो गई

× × ×

सुक्खी इस घटना से इतना अधिक डर गई थी कि घर पहुँच कर भी उस की घबराहट दूर न हुई। उसे हर समय यही अनुभव होता था कि मानों अभी धोबी आएगा और मुझे अपने साथ पकड़ ले जाएगा। रात को, पहले तो बहुत देर तक उसे धोबी के डर से नींद ही न आने पाती; और जब नींद आती भी, तो उस में वह उसी धोबी के सपने देखती रहती थी। कभी-कभी वह भय से चौंक कर उठ बैठती। उस कम्बख़्त धोबी ने इस अपरिपक्व बालिका के कोमल हृदय को इतनी बुरी तरह डरा दिया था कि वह बेचारी दो-तीन दिनों में ही बहुत कमज़ोर होगई। वह धोबी को इतना शक्तिशाली समझती थी कि उस के चंगुल से बचना उसे अपने लिए असम्भव प्रतीत होता था।

इस दशा में तीन दिन और चार रातें निकल गईं। इन दिनों

किस्मत से वह चरवाहा भी इस ओर कभी न आया। चौथे दिन सुक्खी के जी में एक विचार आया।—वह यहां से भाग क्यों न जाय? उस के दिल में यह विचार आया और उस ने बिना अधिक सोच-विचार किए, वहां से भाग जाने का निश्चय कर लिया। धोबी से बचने के लिए वह बेचारी अब सभी-कुछ करने को तैयार थी।

उस की कुटिया से एक मील दूर, पानी के प्रवाह की तरफ़, एक घाट था। सुक्खी अपनी मां से कुछ भी कहे-सुने बिना उसी तरफ़ को निकल गई। उस के आंचल में पांच आने के पैसे बँधे हुए थे। यही उस की कुल जमा-पूँजी थी। दो पैसे देकर सुक्खी भी नाव पर सवार हो गई।

पांच-सात दिनों में करीब साठ मील का सफ़र कर के वह बेचारी एक छावनी में जा पहुँची। किस्मत से वह किसी अंग्रेज़ फौज़ी अफ़सर के घर के सामने जा निकली। उस अफ़सर की पत्नी ने उसे अपने पास बुलाया और कामकाज के सम्बन्ध में कुछ इधर-उधर के सवाल कर के उसे अपने पास नौकर रख लिया।

अभागिनी सुक्खी को एक अच्छा आश्रय मिल गया।

चार साल निकल गए। सुक्खी को न अपने घर वालों का कोई समाचार मिला और न उन्हें सुक्खी का। सुक्खी अब पूर्ण युवावस्था में पहुँच गई। साहब के यहां काफ़ी अच्छा खाते-पीते रहने से उस का शरीर भर आया था और रूप निखर गया था। सोलह-सत्रह बरस की युवती देखने में भद्दी या अरुचिकर प्रतीत

हो--यह बात अपवाद-स्वरूप ही होती है। सुक्खी उन अपवादों में नहीं थी। वह साहब की नौकरी में थी। मेम की उस पर कृपादृष्टि थी। इस लिए उस के पास विवाह के बीसों पैग़ाम आए। मगर उस ने उन में से किसी को भी स्वीकार नहीं किया। उस तरुण चरवाहे की याद वह अभी तक नहीं भूली थी। उस के हृदय में एक वार जो मूर्त्ति घर कर गई थी, उसे वहां से हटाने को वह कभी तैयार नहीं थी। छावनी के अनेक खानसामों ने उसे पत्नी-रूप में लेने की इच्छा प्रकट की, उस की मालकिन ने भी अनेक वार उसे इस बात के लिए प्रेरित किया, परन्तु वह तैयार नहीं हुई। विवाह से अपनी इस तीव्र विरक्ति का कारण भी उस ने किसी पर प्रकट नहीं किया।

× × ×

साहब के यहां प्रतिदिन छावनी की सरकारी दुग्धशाला से दूध आता था, इसे अपने निरीक्षण में लेने का काम सुक्खी के सपुर्द था। सरदियों का मौसम था। रात को काम की अधिकता के कारण सुक्खी ज़रा देर में सोई थी, इस से प्रातःकाल ठीक समय पर उस की नींद नहीं टूटी। दुग्धशाला से दूध वाला आया और कोठी के बाहर किसी को मौजूद न देख कर उस ने बरामदे के निकट जाकर आवाज़ दी—"दूध ले जाओ!"

अन्दर से एक बूढ़ी मेम बाहर निकली और उस ने डांट कर कहा—"दूध के लिए यहां आकर क्यों चिल्लाते हो! जाओ, उधर रसोईघर की तरफ़!"

इस के बाद उस ने आवाज़ दी—"सुक्खी ! ओ सुक्खी !"

सहन के दाईं ओर, रसोईघर के साथ ही सुक्खी का कमरा था; वह शीघ्रता से आंखें मलती हुई बाहर आ खड़ी हुई।

मेम ने कहा—"अभी तक सो रही थी ? देखो, दूध वाले से कह दो, वह इधर आकर शोर न मचाया करे।"

सुक्खी यह बात सुन कर कुछ हैरान हुई। उसे आश्चर्य हुआ कि रोज़ की तरह दूधवाला इधर न आकर बरामदे की तरफ़ क्यों चला गया। मेम अन्दर चली गई थी। सुक्खी ने दूध वाले की तरफ़ देखा। वह नया आदमी था।

सरदियों के उस प्रभात में पृथवी का आंगन हल्के-हल्के कुहरे से व्याप्त था, इस कारण सुक्खी इस आदमी को अच्छी तरह देख नहीं पाई। तो भी वह चौंकी। थोड़ी देर में वह दूधवाला उस के निकट आगया, और बोला—"दूध ले लो !"

सुक्खी अब अच्छी तरह पहिचान गई। ओह, यह तो वही चरवाहा है ! अब वह पहले की अपेक्षा कितना बड़ा, परिपक्व, पतला और गम्भीर होगया है ! सुक्खी का दिल धड़कने लगा। तो भी उस ने आवाज़ देकर एक नौकर को बरतन लाने को कहा।

मालूम होता है, इस समय तक वह चरवाहा भी सुक्खी को पहिचान गया था। मगर सुक्खी को इतने अरसे के बाद अचानक इस यौवन के लावण्य में और साहब की कोठी के पास स्वच्छ वस्त्रों में देख कर वह शायद कुछ झेंप गया। उस ने अपनी आंखें नीची कर लीं। जैसे सुक्खी अब उस की अपेक्षा बहुत बड़ी नमात

में पहुँच चुकी हो।

सुक्खी उस की मुखमुद्रा से पहिचान गई कि वह अब उस का नहीं रहा।--उस ने विवाह कर लिया है !

उस वक्त तो उन दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई; मगर दो-तीन दिनों के बाद उन में धीरे-धीरे फिर से बातचीत होने लगी। अभी पन्द्रह दिन से ही वह चरवाहा इस छावनी की दुग्धशाला में नौकर हुआ था और अपनी पत्नी के साथ दुग्धशाला के समीप की एक फूँस की झोंपड़ी में रहता था।

सुक्खी ने यह सब देखा, सुना और अनुभव किया। मगर उस के दिल में इस चरवाहे के प्रति शिकायत का कोई हल्का-सा भाव तक भी उत्पन्न नहीं हुआ।

धीरे-धीरे सुक्खी उस चरवाहे के घर भी आने-जाने लगी। चरवाहे की पत्नी को वह अपनी भाभी कहती थी। चरवाहे का एक छोटा-सा पुत्र भी था; उस की उम्र अभी बारह-तेरह महीनों की ही थी। सुक्खी इस बच्चे से असीम प्यार करती थी। यहां तक कि वह अनेक वार उसे अपने साथ ले जाती और दो-दो दिनों तक निरन्तर अपने पास ही रखती।

छावनी के अन्य नौकरों-चाकरों तथा खानसामों ने यह सब देखा। वे सुक्खी पर ताने कसने लगे और उस चरवाहे के भाग्यों से ईर्ष्या करने लगे। परन्तु सुक्खी का अन्तःकरण कितना उच्च और पवित्र था, उसे वही सर्वान्तर्यामी परमात्मा ही जानता है।

भाग्य से अगली वसन्त में उस चरवाहे का देहान्त होगया। उस की मृत्यु पर चरवाहे की पत्नी भी रोई और सुक्खी भी रोई। मगर उन दोनों के रोने में फ़र्क था। चरवाहे की पत्नी कुछ ही दिनों के बाद अपने बच्चे को सुक्खी के पास छोड़ कर अपने मैके चली गई और पांच-छः मास बाद उस का दूसरा विवाह होगया।

इधर सुक्खी को बरसों तक किसी ने हँसते हुए नहीं देखा। अपनी मालकिन का काम अब भी वह अच्छी तरह करती थी, मगर उस का दिल सदैव मुर्झाया रहता था। चरवाहे के उस नन्हें-से पुत्र को उस ने अपना पुत्र बना लिया। वह उस से इतना स्नेह करती थी, जितना कोई मां भी अपने बच्चे से न करेगी।

इस बच्चे के पालन-पोषण में उस ने अपना सर्वस्व लगा दिया। अपनी सम्पूर्ण तनख्वाह वह इसी बच्चे पर खर्च कर देती देती थी।

इस बच्चे को उसने पढ़ाया-लिखाया और अन्त में आदमी बना कर अपने साहब की मदद से उसी छावनी में एक अच्छी नौकरी भी दिलवा दी।

चरवाहे का वह लड़का अब बाईस साल का नवयुवक है। उस की माता झांसी जा रही है, और वह उसे स्टेशन पर विदा देने आया है। वह देखो, गाड़ी सीटियां दे रही है—

❀ ❀ ❀

सहसा मेरी नींद टूट गई। मैं ने देखा, गाड़ी सचमुच

सीटियां दे रही है, कमरे में और कोई यात्री नहीं है, और एक महाशय मुझे आवाज़ देकर कह रहे हैं—"कब तक सोएँगे जनाब! अगला स्टेशन दिल्ली है, अब ज़रा अपने डिब्बे में आकर सामान की सुध भी लीजिए!"

वर्षा अब भी जारी थी, परन्तु अब मेरे दिल में और ही तरह के भाव उठ रहे थे।